प्रथम संस्करण : २ हजार
(५ सितम्बर २०१२)
द्वितीय संस्करण : २ हजार
(१३ नवम्बर २०१२)

मूल्य : **छह रुपये**

मुद्रक :
श्री प्रिन्टर्स
मालवीयनगर, जयपुर

अनुक्रमणिका

- प्रकाशकीय ३
- श्री तारणस्वामीजी का संक्षिप्त परिचय ४
- संपादकीय मनोगत १०
- गुणस्थान भूमिका ११

मिथ्यात्व १६
सासादन १७
सम्यग्मिथ्यात्व १९
अविरतसम्यक्त्व २२
देशविरत २८
प्रमत्तविरत ३१
अप्रमत्तविरत ३५
अपूर्वकरण ३७
अनिवृत्तिकरण ३८
सूक्ष्मसाम्पराय ३९
उपशान्तमोह ४०
क्षीणमोह ४२
सयोगकेवली ४४
अयोग केवली ४५
सिद्धभगवान ४६

प्रथम संस्करण : २ हजार
(५ सितम्बर २०१२)
द्वितीय संस्करण : २ हजार
(१३ नवम्बर २०१२)
तृतीय संस्करण : ३ हजार
(२४ नवम्बर २०१२)

मूल्य : **छह रुपये**

मुद्रक :
श्री प्रिन्टर्स
मालवीयनगर, जयपुर

अनुक्रमणिका

- प्रकाशकीय ३
- श्री तारणस्वामीजी का संक्षिप्त परिचय ४
- संपादकीय मनोगत १०
- गुणस्थान भूमिका ११

मिथ्यात्व १६
सासादन १७
सम्यग्मिथ्यात्व १९
अविरतसम्यक्त्व २२
देशविरत २८
प्रमत्तविरत ३१
अप्रमत्तविरत ३५
अपूर्वकरण ३७
अनिवृत्तिकरण ३८
सूक्ष्मसाम्पराय ३९
उपशान्तमोह ४०
क्षीणमोह ४२
सयोगकेवली ४४
अयोग केवली ४५
सिद्धभगवान ४६

श्री जिनतरण-तारण स्वामी विरचित

चौदह गुणस्थान

अनुवादक एवं टीकाकार :

धर्म दिवाकर ब्र. शीतलप्रसादजी

सम्पादक :

ब्र. यशपाल जैन

एम.ए., जयपुर

प्रकाशक :

तारण-तरण चैत्यालय सिलवानी

जि. रायसेन (मध्यप्रदेश)

श्री जिनतरण-तारण स्वामी विरचित

चौदह गुणस्थान

अनुवादक एवं टीकाकार :

धर्म दिवाकर ब्र. शीतलप्रसादजी

सम्पादक :

ब्र. यशपाल जैन

एम.ए., जयपुर

प्रकाशक :

पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर

ए-४, बापूनगर, जयपुर (राजस्थान) ३०२०१५

फोन : (०१४१) २७०५५८१, २७०७४५८

फैक्स : २७०४१२७, E-mail : ptstjaipur@yahoo.com

एवं

तारण-तरण चैत्यालय सिलवानी

जि. रायसेन (मध्यप्रदेश)

प्रथम संस्करण : २ हजार
(५ सितम्बर २०१२)

मूल्य : **छह रुपये**

मुद्रक :
प्रिन्ट 'ओ' लैण्ड
बाईस गोदाम, जयपुर

अनुक्रमणिका

- श्री प्रकाशकीय ३
- श्री तारणस्वामीजी का संक्षिप्त परिचय ४
- संपादकीय मनोगत १०
- गुणस्थान भूमिका ११

मिथ्यात्व १६
सासादन १७
सम्यग्मिथ्यात्व १९
अविरतसम्यक्त्व २२
देशविरत २८
प्रमत्तविरत ३१
अप्रमत्तविरत ३५
अपूर्वकरण ३७
अनिवृत्तिकरण ३८
सूक्ष्मसाम्पराय ३९
उपशान्तमोह ४०
क्षीणमोह ४२
सयोगकेवली ४४
अयोग केवली ४५
सिद्धभगवान ४६

प्रकाशकीय

पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर के माध्यम से **आध्यात्मिक संत श्री जिन तारण-तरण स्वामी** विरचित न्यानसमुच्चयसार के गुणस्थान विभाग को प्रथृक **'चौदह गुणस्थान'** नाम से प्रकाशित किया जा रहा है। इस ग्रन्थ का हिन्दी अनुवाद व टीका ब्र. शीतलप्रसादजी की है, जो अपने आप में महत्त्वपूर्ण हैं।

'चौदह गुणस्थान' के इस विभाग को सम्पादित करने का महती कार्य प्रकाशन विभाग के मंत्री श्री ब्र. यशपाल जैन ने किया है। आशा है पाठकगण सुरुचिपूर्वक चौदह गुणस्थानों का मर्म समझ सकेंगे।

पुस्तक की विषय वस्तु नाम से ही ज्ञात हो जाती है। इसकी उपयोगिता के सम्बन्ध में ब्र. यशपालजी द्वारा लिखित सम्पादकीय मनोगत पढ़कर पाठक विशेष जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

न्यानसमुच्चयसार के इस गुणस्थान विभाग में श्री जिन तारण-तरण स्वामी ने चौदह गुणस्थानों की विस्तृत विवेचना की है। पाठक उनके भावों को तो पूर्णरूप से हृदयंगम कर सकेंगे साथ ही ब्र. शीतलप्रसादजी का दृष्टिकोण भी ज्ञानार्जन में सहायक होगा। श्री जिन तारण-तरण स्वामी का संक्षिप्त परिचय पण्डित फूलचन्दजी सिद्धान्त शास्त्री द्वारा लिखा गया है जो पाठकों के लाभार्थ दृष्टव्य हैं।

कृति का सम्पादन करने हेतु ट्रस्ट ब्र. यशपालजी का हृदय से आभारी है। पाठकों तक अल्पमूल्य में कृति पहुँचाने हेतु जिन महानुभावों ने कीमत कम करने हेतु आर्थिक सहयोग दिया है ट्रस्ट उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करता है।

सदा की भाँति पुस्तक का आवरण व प्रकाशन सहयोग श्री अखिल बंसल द्वारा प्राप्त हुआ है तथा कम्पोजिंग कार्य श्री कैलाशचन्दजी शर्मा द्वारा किया गया है, अतः दोनों महानुभाव धन्यवाद के पात्र हैं।

आप सभी इस महत्वपूर्ण कृति से लाभान्वित हों, यही भावना है।

– डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल
महामंत्री – पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर

श्री जिनतरण-तारण स्वामीजी का संक्षिप्त परिचय

माता का नाम	–	वीरश्री
पिता का नाम	–	गढा शाह
जन्म का स्थान	–	पुष्पावती नगरी
जाति	–	गाहामूरी बासल्ल गोत्र परवार (पोरपट्ट)
जन्म	–	अगहन सुदी ७ गुरुवार, विक्रम सं. १५०५
मामा का गाँव	–	सेमरखेड़ी
सल्लेखना मरण	–	जेठ बदी ७ शनिवार, वि.सं. १५७२
जीवन-काल	–	६६ वर्ष ५ माह, १५ दिन

छद्मस्थवाणी के आधार पर स्वामीजी के समग्र जीवन को पाँच भागों में विभक्त किया जा जा सकता है :-

(१) बाल जीवन **(२)** शास्त्राभ्यास जीवन **(३)** स्वात्मचिन्तन-मनन जीवन **(४)** ब्रह्मचर्य सहित निरतिचार व्रती जीवन **(५)** मुनि जीवन।

१. बाल जीवन –

बाल जीवन में स्वामीजी के ११ वर्ष व्यतीत हुए। इस काल में स्वामीजी ने लौकिक और प्रारंभिक धार्मिक शिक्षा द्वारा एतद्विषयक मिथ्यात्व (अज्ञान) को दूर किया। हो सकता है कि वे ५ वर्ष की अवस्था में अपने पिताजी के साथ अपने मामाजी के यहाँ गये हों और गढ़ौला ग्राम में उनकी चन्देरी पट्ट के अधीश भ. देवेन्द्रकीर्ति से भेंट हुई हो।

यह भी सम्भव है कि उस भेंट के समय भ. देवेन्द्रकीर्ति ने यह अभिमत प्रकट किया हो कि आप का यह बालक होनहार है। इसके शारीरिक चिह्न और हस्तरेखायें ऐसी हैं जो स्पष्ट करती हैं कि यह बालक महान् तपस्वी होकर लाखों का कल्याण करेगा।

२. शास्त्राभ्यास जीवन –

स्वामीजी की भेंट भट्टारक देवेन्द्रकीर्ति से तो पहले ही हो गई होगी और उन्होंने अपने कानों से अपने विषय में उनका अभिमत भी जान लिया होगा, इससे सहज ही स्वामीजी का मन उनके (भ. देवेन्द्रकीर्ति के) सम्पर्क में रह कर शास्त्राभ्यास करने का हुआ हो तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं। अतएव लगता है कि ११ वर्ष के होने पर वे अपने परिवार से विदा होकर उनके पास शास्त्राभ्यास के लिए चले गये होंगे।

समय शब्द, छह द्रव्य, नौ पदार्थ और द्रव्य श्रुत दोनों के अर्थ में आता है। अतः 'समय मिथ्या विली वर्ष दस' से प्रकृत में यही अर्थ फलित होता है कि ११ वर्ष के होने पर २२ वर्ष की उम्र के होंगे तब स्वामीजी ने अपने शिक्षागुरु की शरण में रहकर शास्त्रीय अभ्यास द्वारा अपने शास्त्र विषयक (अज्ञान) को दूर किया।

३. स्वात्मचिन्तन मनन जीवन –

स्वामीजी का जीवन तो दूसरे साँचे में ढलना था, उन्हें कोई भट्टारक तो बनना नहीं था, इसलिये लगता है कि वे २१ वर्ष की उम्र होने पर अपने शिक्षागुरु का सानिध्य छोड़कर सेमरखेड़ी अपने मामा के घर चले आये होंगे और वहाँ के शांत निर्जन प्रदेश को पाकर एकान्त में स्वात्मचिन्तन मनन में लग गये होंगे। यहाँ सेमरखेड़ी से कुछ दूर पहाड़ी प्रदेश है, उसके परिसर और ऊपरी भाग में चार गुफाओं के सन्निकट एक पहाड़ी नदी है।

प्रदेश बड़ा मनोहर और चित्ताकर्षक है। सम्भव है छद्मस्थवाणी का 'प्रकृति मिथ्या विली वर्ष नौ' यह वचन इसी अर्थ को सूचित करता है कि स्वामीजी ने ऐसा एकान्त निर्जन प्रदेश पाकर ध्यान, चिन्तन, मनन द्वारा अपनी उत्तरकालीन जीवनरेखा यहीं पर स्पष्ट और पुष्ट की। उनके स्वभाव में मार्ग के निर्णय विषयक जो अस्पष्टता थी उसे भी इन नौ वर्षों के चिन्तन-मनन द्वारा दूर किया। अब उनके सामने स्पष्ट ध्येय था, जिस पर चलने के लिये वे परिपक्व हो गये।

४. ब्रह्मचर्य सहित निरतिचार व्रती जीवन –

जैसा कि हम पहले बतला आये हैं अपने जन्म-समय से लेकर पिछले ३० वर्ष स्वामीजी को, शिक्षा और दूसरे प्रकार अपनी आवश्यक तैयारी में लगे। इस बीच उन्होंने यह भी अच्छी तरह जान लिया कि मूल संघ कुन्दकुन्द आम्नाय के भट्टारक भी किस गलत मार्ग से समाज पर अपना वर्चस्व स्थापित करते हैं। उसमें उन्हें मार्गविरुद्ध क्रियाकाण्ड की भी प्रतीत हुई। अतः उन्होंने ऐसे मार्ग पर चलने का निर्णय लिया जिस पर चलकर भट्टारकों के पूजा आदि सम्बन्धी क्रियाकाण्ड की अयथार्थता को समाज हृदयंगम कर सके। किन्तु इसके लिये उनकी अब तक जितनी तैयारी हुई थी उसे उन्होंने पर्याप्त नहीं समझा।

उन्होंने अनुभव किया कि जब तक मैं अपने वर्तमान जीवन को संयम से पुष्ट नहीं करता तब तक समाज को दिशादान करना सम्भव नहीं है। **यही कारण है कि ३० वर्ष की जवानी की उम्र में सर्व प्रथम वे स्वयं को व्रती बनाने के लिए अग्रसर हुए।** छद्मस्थवाणी के **'मिथ्याविली वर्ष सात'** इत्यादि वचनों से ज्ञात होता है कि उन्होंने मिथ्यात्व, माया और निदान इन तीन शल्यों के त्यागपूर्वक इस उम्र में व्रत स्वीकार किये। जिनमें उत्तरोत्तर विशुद्धि उत्पन्न करते हुए वे इस पद पर सात वर्ष तक रहे।

उन्होंने अपनी रचनाओं में जनरंजन राग, कलरंजन दोष और मनरंजन गारव को त्यागने का पद-पद पर उपदेश किया है। यहाँ जनरंजन राग से चारों प्रकार की विकथायें ली गई है। **कलरंजन दोष से दस प्रकार के अब्रह्म को ग्रहण किया गया है** और मनरंजन गारव से सम्यक्त्व के २५ मल लिये गये हैं। इससे मालूम पड़ता है कि आपने व्रती जीवन में उन्होंने इन सब दोषों के परिहारपूर्वक पूर्ण ब्रह्मचर्य का भी सम्यक् प्रकार से पालन किया।

५. मुनि जीवन –

स्वयं को अध्यात्ममय सांचे में ढालने के लिए और अपने संकल्प के अनुसार समाज को मार्गदर्शन करने के लिए उन्हें जो भी करणीय था उसे

वे ६० वर्ष की उम्र होने तक सम्पन्न कर चुके थे। संयम के अभ्यास द्वारा उन्होंने अपने चित्त को पूर्ण विरक्त तो बना ही लिया था, अतः वे अन्य सब प्रयोजनों से मुक्त होकर पूरी तरह से आत्मकार्य सम्पन्न करने में जुट गये। (१) ठिकानेसार (खुरई) पत्र २२१ (३) ठिकानेसार (ब्र.जी.) पत्र ८५। अर्थात् उन्होंने श्रावक पद की निवृत्ति पूर्वक मुनि पद अंगीकार कर लिया। छद्मस्थवाणी के उत्पन्न भेष **उवसग्ग सहन** इत्यादि वचन से भी यही ध्वनित होता है कि साठ वर्ष की उम्र होने पर उन्होंने नियम से श्रावक पद से निवृत्ति ले ली होगी और मुनिपद अंगीकार कर वे पूर्ण रूप से संयमी बन गये होंगे।

इस पद पर वे अनेक प्रकार के मानवीय तथा दूसरे प्रकार के उपसर्गों को सहन करते हुए **६ वर्ष ५ माह १५ दिन रहे और जेठ वदी सप्तमी सं. १५७२ को इहलीला समाप्त कर स्वर्गवासी हुए।**

यह स्वामीजी का संक्षिप्त जीवन-परिचय है। इसे हमने छद्मस्थवाणी के मिथ्याविली वर्ष ग्यारह इत्यादि के आधार पर लिपिबद्ध किया है। यद्यपि छद्मस्थवाणी के उक्त वचन गूढ़ हैं पर उनमें स्वामीजी की जीवन-कहानी ही लिपिबद्ध हुई है, यह पूरे प्रकरण पर दृष्टिपात करने से स्पष्ट हो जाता है। उनकी जीवनी को लिपिबद्ध करते समय हमने छद्मस्थवाणी के उक्त वचनों को और तात्कालिक परिस्थिति को विशेष रूप से ध्यान में रखा है। इसमें हमने अपनी ओर से कुछ भी मिलाया नहीं है और न उनके विषय में फैली अनेक उलट-पुलट मान्यताओं की ही चर्चा की है।

स्वामीजी का जीवन गौरवपूर्ण था। वे छल प्रपंच से बहुत दूर थे। भय उनके जीवन में कहीं भी नहीं था। उन्हें अनादिनिधन अपने ज्ञायकस्वभाव आत्मा का पूर्ण बल प्राप्त था। वे उसके लिये ही जिये और उसकी भावना के साथ ही स्वर्गवासी हुए। ऐसे दृढ़ निश्चयी महान् आत्मा के अनुरूप हमारा जीवन बने, यह भावना है।

साहित्य रचना –

स्वामीजी ने अपने जीवन में अनेक महत्वपूर्ण ग्रन्थों की रचना की। उनमें आचार की दृष्टि से श्रावकाचार मुख्य है और अध्यात्म की दृष्टि से भयखिपनिक – ममल पाहुड़, उपदेश–शुद्धसार तथा ज्ञानसमुच्चयसार मुख्य हैं। तीन बत्तीसी की रचना भी प्रायः इस दृष्टिकोण से हुई है। सिद्धि स्वभाव ग्रन्थ का अपना अलग स्थान है। मुख अध्यात्म की ओर ही है।

अन्य सब ग्रन्थों की भिन्न–भिन्न प्रयोजनों को लक्ष्य में रखकर रचना हुई है। स्वामीजी का समग्र जीवन अध्यात्मस्वरूप होने से उन सब रचनाओं के द्वारा पुष्टि अध्यात्म की ही होती है। **उक्त सब रचनाओं में से ९ रचनाएँ पद्यमय हैं।** भाषा की स्वतंत्रता है।

स्वामीजी ने किसी एक भाषा और व्याकरण के नियमों में अपने को जकड़ कर रचनाएँ नहीं की हैं। जहाँ जिस भाषा में अपने हृदय के भावों का व्यक्त करना स्वामीजी को उचित प्रतीत हुआ वहाँ उस भाषा का अवलम्बन लिया गया है।

रचनाओं में प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश और बोलचाल की हिन्दी इन चारों भाषाओं के शब्दों का समावेश किया गया है।

अनेक स्थलों पर रचना का प्रवाह गूढ़ हो जाने से स्वामीजी के हृदय की थाह लेने के लिये अथक परिश्रम अपेक्षित है।

स्वामीजी मर्मज्ञ तत्ववेत्ता होने के साथ संगीतज्ञ भी रहे हैं। लगता है कि वे अपने स्वात्मचिन्तन–मनन और जनसम्पर्क के समय अपनी इस सहज प्राप्त सर्वजनप्रिय कोमल कला का बहुलता से उपयोग करते रहे होंगे। ठिकानेसार की तीनों प्रतियों में ममल पाहुड़ की कौन फूलना किस निमित्त किस ग्राम में रची गयी, इसका कुछ विवरण लिपिबद्ध किया गया है; उससे उक्त तथ्य की पुष्टि को पूरा बल मिलता है। इस पर से मुझे लगता है कि स्वामीजी ने अपनी ग्रन्थ–रचना का प्रारंभ ममल पाहुड़ से ही किया होगा।

मुनिपद अंगीकार करने के बाद अवश्य ही उन्होंने अपने यातायात के क्षेत्र को सीमित कर दिया होगा। श्रावक के सात शीलों को स्वामीजी ने पाँच महाव्रतों के साथ मुनि–पद में रहते हुए अपने अधिकतर समय को ध्यान में ही लगाया होगा। स्पष्ट है कि उन्होंने अधिकतर मौलिक रचनाओं का सृजन श्रावक अवस्था में ही कर लिया होगा।

मेरी बहुत समय से यह तीव्र इच्छा रही है कि मैं मध्यप्रदेश बुन्देलखण्ड के इस महान संत के यथार्थ जीवन के विषय में कुछ लिखूँ। इसके लिए मैं कुछ समय से प्रयत्नशील भी था। मुझे प्रसन्नता है कि अभी तक मैं इस सम्बन्ध की जो थोड़ी सी सामग्री संचित कर सका उसी का यह परिणाम है जो इस रूप में समाज के सामने प्रस्तुत है। अभी इस विषय पर बहुत कुछ काम होना है। मुझे आशा है सबके सहयोग से उसमें अवश्य ही सफलता मिलेगी।

पण्डित फूलचन्दजी जैन
सिद्धान्तशास्त्री, वाराणसी

श्री जिन तारण स्वामी ने अपने १४ ग्रन्थों को विशेष ढंग से ५ मतों में विभाजित किया है। संसार में अनन्त मत है परन्तु आत्मकल्याण हेतु ५ मतें स्थापित की हैं :

१. **आचार मत में –** श्रावकाचार
२. **विचार मत में –** मालारोहण, पंडित पूजा, कमल बत्तीसी
३. **सार मत में –** ज्ञान समुच्चय, सार, उपदेश, शुद्ध सार, त्रिभंगीसार
४. **ममल मत में –** ममल पाहुड़, चौबीसी ठाणा
५. **केवल मत में –** छद्मस्थवाणी, नाम माला, खातिका विशेष

सम्पादकीय मनोगत

आज श्री जिन तारणतरण स्वामी द्वारा विरचित न्यानसमुच्चयसार के मात्र गुणस्थान विभाग को सम्पादित करके आपके करकमलों में देने का पुण्यमय कार्य करने में सफल हो रहा हूँ; इसका मुझे आनन्द है।

पुण्यमय नगरी सिलवानी के तारण समाज के आमंत्रण के अनुसार मैं सिलवानी के चैत्यालय में इसवी सन् २०१० के दशलक्षण पर्व में गया था। उस समय **न्यानसमुच्चयसार ग्रन्थ** का स्वाध्याय करने का सुअवसर मिला। इस पवित्र शास्त्र में मुझे गुणस्थान अधिकार पढ़ने को मिला। मुझे इस अधिकार को पढ़कर विशेष आनन्द हुआ। इसकारण इसका विशेष अध्ययन करने का मानस बनाया और अध्ययन भी किया।

गुणस्थान विषय पढ़ाने का भाग्य जयपुर में संचालित श्री टोडरमल दि. जैन सिद्धान्त महाविद्यालय के विद्यार्थियों के साथ-साथ अनेक नगरों के जिज्ञासुओं को भी पढ़ाने का मौका मिलता ही रहता है। गुणस्थान संबंधी जानकारी अधिक विषदरूप से हो, इस भावना से मैंने इस गुणस्थान के प्रकरण को संपादित किया है।

मूल ग्रन्थ का विषय तो **श्री जिन तारणतरण स्वामीजी का** है और हिन्दी अनुवाद तथा टीका **ब्र. शीतलप्रसादजी का** है। मैंने मात्र संपादन का ही काम किया है।

संपादन में नवीनता निम्नप्रकार है –

१. **विषय के अनुसार छोटे-छोटे अनुच्छेद बनाये हैं।**
२. **विषय स्पष्ट हो, इस भावना से अक्षरों को छोटा-मोटा बनाया है।**
३. **जटिल/कठिन विषय सुलभ हों, इस भावना से अनेक स्थान पर १.२. आदि संख्या का प्रयोग किया है। कहीं हाथ का निशान या अन्य काले बिन्दू आदि का उपयोग किया है।**
४. **पाठकों की सुविधा के लिए और विषय की स्पष्टता के लिए कहीं-कहीं मैंने अन्य शास्त्रों के अनुसार अल्पसा लिखा है, उसे कंस में दिया है।**
५. **मूल गाथा और अन्वयार्थ तथा भावार्थ को हमने पूर्ववत् वही का वही रखा है। किंचित् मात्र भी बदला नहीं है।**
६. **गोम्मटसार की गाथाओं को न देकर उसका मात्र ब्र. शीतलप्रसादजी कृत अर्थ ही दिया है।**
७. **मूल गाथाओं का क्रमांक ग्रंथानुसार तो दिया ही है; साथ ही साथ मात्र गुणस्थान की गाथाओं का ज्ञान हो, इस भावना से १,२ इसप्रकार क्रम से नम्बर भी दिये हैं।**

संपादन के कार्य में ब्र. विमलाबेन जबलपुर एवं वाशिम निवासी श्री सागर जवलकर ने सहयोग दिया है, अतः धन्यवाद।

श्री जिन तारणतरण स्वामी विरचित

चौदह गुणस्थान

मिच्छा सासन मिस्रो, अविरै देसव्रत सुध संमिधं। (१)
प्रमत्त अप्रमत्त भनियं, अपूर्वकरन सुध संसुधं ॥६५८॥
अनिवर्त सूक्ष्मवंतो, उवसंत कषाय षीन सुसमिधो। (२)
सजोग केवलिनो, अजोग केवली हुंति चौदसमो ॥६५९॥

अन्वयार्थ – (मिच्छा सासन मिस्रो) १. मिथ्यात्व, २. सासादन, ३. मिश्र **(अविरै देसव्रत सुध संमिधं)** ४. अविरत सम्यग्दर्शन, ५. देशव्रत जो शुद्धता सहित है **(प्रमत्त अप्रमत्त भनियं)** ६. प्रमत्त विरत, ७. अप्रमत्तविरत कहा गया है **(अपूर्वकरन सुध संसुधं)** ८. अपूर्वकरण जो परम शुद्ध है **(अनिवर्त सूक्ष्मवंतो)** ९. अनिवृत्तिकरण, १०. सूक्ष्मलोभ **(उवसंत कषाय क्षीन सुसमिधो)** ११. उपशांत कषाय १२. क्षीणकषाय जहाँ कषाय भले प्रकार क्षय हो गई हैं **(सजोग केवलिनो)** १३. सयोग केवली जिन **(अजोग केवली हुंति चौदसमो)** १४. अयोग केवली जिन चौदहवाँ गुणस्थान है।

भावार्थ – ● मोहनीय कर्म और योग के सम्बन्ध से चौदह गुणस्थान हैं। ● दसवें गुणस्थान तक मोह और योग दोनों का सम्बन्ध है। ● ग्यारहवें से तेरहवें - इन तीनों गुणस्थानों का मात्र योग के साथ ही सम्बन्ध है। ● चौदहवें गुणस्थान में योग भी चंचल नहीं है।

● पहले पाँच गुणस्थान परिग्रहधारियों के होते हैं। ● छठे से बारहवें तक परिग्रह त्यागी निर्ग्रंथ साधुओं के गुणस्थान होते हैं। ● तेरहवाँ, चौदहवाँ गुणस्थान अरहंत केवली भगवान के ही होते हैं। ● सिद्ध भगवान सर्व गुणस्थानों से बाहर हैं। **श्री गोम्मटसार जीवकांड में कहा है –**

''दर्शन मोहनीयादि कर्मों के उदय, उपशम, क्षय, क्षयोपशम आदि अवस्था के होने पर होने वाले परिणामों से युक्त जो जीव होते हैं, उन

जीवों को सर्वज्ञ देव ने उसी गुणस्थान वाला और परिणामों को गुणस्थान कहा है। इन गुणस्थानों से जीव के परिणामों की अशुद्ध व शुद्ध अवस्थाएँ मालूम पड़ती हैं।

मोहनीय कर्म के **२८** भेद हैं – तीन दर्शन मोहनीय कर्म १. मिथ्यात्व, २. सम्यक्त्व-मिथ्यात्व और ३. सम्यक्प्रकृति।

चारित्र मोहनीय के **२५** भेद हैं – १६ कषाय, ९ नो कषाय। अनन्तानुबन्धी क्रोध-मान-माया-लोभ, अप्रत्याख्यानावरण क्रोधादि ४, प्रत्याख्यानावरण क्रोधादि ४, संज्वलन क्रोधादि ४, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुंवेद, नपुंसकवेद – ये नौ नो या इषत् या कम कषाय हैं।

- ☛ अनन्तानुबन्धी व मिथ्यात्व के उदय से **मिथ्यात्व गुणस्थान** होता है।
- ☛ केवल अनन्तानुबन्धी कषाय के उदय से **सासादन गुणस्थान** होता है।
- ☛ मिश्रदर्शनमोहनीय कर्म के उदय से तीसरा **मिश्र गुणस्थान** होता है।
- ☛ मिथ्यात्व एक या तीनों दर्शन मोहनीय के उपशम, क्षय या क्षयोपशम से तथा अनन्तानुबन्धी के उदय न होने से चौथा **अविरत गुणस्थान** होता है; क्योंकि **अनन्तानुबन्धी कषाय सम्यग्दर्शन की व स्वरूपाचरण की घातक है।**
- ☛ श्रावकव्रत को रोकने वाले अप्रत्याख्यानावरण कषाय के उदय न होने से पाँचवाँ **देशव्रत गुणस्थान** होता है।
- ☛ सर्व त्याग को रोकने वाले प्रत्याख्यानावरण कषाय के उदय न होने से **प्रमत्तविरत साधु का गुणस्थान** होता है।
- ☛ संज्वलन चार कषाय तथा नौ नोकषाय का मंद उदय होने से **अप्रमत्त गुणस्थान** होता है।
- ☛ संज्वलन कषाय के अति मंद उदय होने पर **अपूर्वकरण गुणस्थान** होता है।
- ☛ जब चार संज्वलन कषाय व तीन वेद का ही उदय रह जाता है, तब **अनिवृत्तिकरण गुणस्थान** होता है।

- ☛ जब केवल सूक्ष्म लोभ का उदय रहता है, तब दसवाँ **सूक्ष्मसाम्पराय नाम का गुणस्थान** होता है।
- ☛ सर्व चारित्र मोह के उपशम से **ग्यारहवाँ उपशांतमोह** व उनके क्षय से **क्षीणमोह बारहवाँ गुणस्थान** होता है।
- ☛ चार घातिया कर्मों के क्षय से **तेरहवाँ सयोगकेवली** व योगों के भी न रहने पर **चौदहवाँ अयोगकेवली गुणस्थान** होता है।

ए चौदस गुनठानं, हुंति ससहाव सुधमप्पानं।(३)
अप्प सरुवं पिच्छदि, अप्पा परमप्प केवलं न्यानं॥६६०॥

अन्वयार्थ – (ए चौदस गुनठानं) ये ऊपर कहे प्रमाण चौदह गुणस्थान **(ससहाव सुधमप्पानं हुंति)** अपने स्वभाव से शुद्ध आत्मा के ही होते हैं **(अप्पा अप्प सरुवं पिच्छदि)** जब आत्मा अपने आत्मा के स्वभाव का अनुभव करता है, तब **(केवलं न्यानं परमप्प)** केवलज्ञान को पाकर परमात्मा हो जाता है।

भावार्थ – यद्यपि आत्मा स्वभाव से शुद्ध है; तथापि संसार अवस्था में कर्मों के मैल के निमित्त से ये चौदह श्रेणियाँ (स्थान) जीवों के भावों की हो जाती हैं। इनमें से जिस श्रेणी से यह आत्मा अपने आत्म स्वरूप को अनुभव करने लगता है, उस श्रेणी से चढ़ता हुआ बारहवें के अन्त में केवलज्ञान को पाकर परमात्मा हो जाता है।

तत्वं च दव्व कायं, पदार्थ सुध परमप्पानं।(४)
हेय उपादेय च गुनं, वर दंसन न्यान चरन सुधानं॥६६१॥

अन्वयार्थ – (तत्वं च दव्व कायं) सात तत्त्व, छह द्रव्य, पाँच अस्तिकाय **(पदार्थ सुध परमप्पानं)** नव पदार्थ तथा शुद्ध परमात्मा को जानकर **(हेय उपादेय च गुनं)** जो आत्मा से भिन्न तत्त्व है, वह त्यागने योग्य हेय है। आत्मा का जो गुण है वह ग्रहण करने योग्य उपादेय है **(वर दंसन न्यान चरन सुधानं)** श्रेष्ठ व शुद्ध सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान व सम्यक्चारित्र ही उपादेय हैं।

भावार्थ – सम्यग्दृष्टि जीव का कर्त्तव्य है कि सात तत्त्व आदि को समझ कर उसमें भेद विज्ञान के द्वारा विचार करे तो विदित होगा कि **सात तत्त्व व नौ पदार्थ – १. जीव और २. कर्म पुद्गल (अजीव) के बन्ध व मोक्ष की अपेक्षा से ही बने हैं।** ३. कर्मों का आना आस्रव है। ४. कर्मों का बन्धन बन्ध है। ५. कर्म का रुकना संवर है। ६. कर्म का झड़ना निर्जरा है। ७. सर्व कर्मों का छूट जाना मोक्ष है। ८. पुण्य कर्म प्रकृति **पुण्य** है। ९. पाप कर्म प्रकृति **पाप** है।

सब कर्म, पुद्गल होने से हेय है। **एक शुद्धात्मा उपादेय है। छह द्रव्य व पाँच अस्तिकायों में भी एक शुद्ध जीव द्रव्य या जीव अस्तिकाय ही ग्रहण करने योग्य है।**

आत्मा के स्वरूप का श्रद्धान, ज्ञान व चारित्र ही निश्चय रत्नत्रय है, जो आत्मानुभव रूप है, यही मोक्ष का मार्ग है; ऐसा सम्यक्त्वी समझता है।

टंकोत्कीर्न अप्पा, दंसन मल मूढ़ विरय अप्पानं।(५)
अप्पा परमप्प सरूवं, सुधं न्यान मयं विमल परमप्पा।।६६२।।

अन्वयार्थ – (टंकोत्कीर्ण अप्पा) टांकी से उकेरी हुई मूर्ति के समान अविनाशी स्वभाव से अमिट यह आत्मा है **(दंसन मल मूढ़ विरय अप्पानं)** दर्शन मोहनीय कर्म मल की मूढ़ता से रहित यह आत्मा है **(अप्पा परमप्प सरुवं)** आत्मा परमात्म स्वरूप है **(सुधं न्यान मयं)** शुद्ध ज्ञानमयी है **(विमल परमप्पा)** कर्ममल रहित परमात्मा है।

भावार्थ – सम्यग्दृष्टि, आत्मा को शुद्ध निश्चय नय के द्वारा ऐसा अनुभव करता है कि यह सदा रहने वाला है, त्रिकाल एकरूप द्रव्यस्वरूप है, द्रव्य का स्वभाव कभी मिटता नहीं।

दर्शन मोहनीय कर्म के उदय से जो मिथ्यात्वभाव होता है वह मिथ्यात्वभाव आत्मा में नहीं है। सम्यग्दर्शन आत्मा का स्वभाव है; जिससे इस आत्मा को अपने आत्मा के सच्चे स्वरूप की यथार्थ प्रतीति होती है। **यह आत्मा निश्चय से परमात्मस्वरूप है, शुद्ध है, ज्ञानमयी है, वीतराग है, कर्ममल रहित, निरंजन, स्वयं व परमात्मरूप ही है।**

रूव भेय विन्यानं, नय विभागेन सद्दहं सुधं।(६)
अप्प सरूवं पेच्छदि, नय विभागेन सार्धं दिट्ठं।।६६३।।

अन्वयार्थ – (भेय विन्यानं) भेद विज्ञान **(नय विभागेन सुधं रूव सद्दहं)** निश्चय नय के द्वारा पर से स्वरूप का श्रद्धान रखता है **(नय विभागेन सार्धं दिट्ठं)** नय विभाग के साथ जो निर्मल दृष्टि है वह **(अप्प सरुव पिच्छदि)** आत्मा के स्वरूप को यथार्थ देखती है।

भावार्थ – जैन सिद्धान्त में निश्चयनय तथा व्यवहारनय के द्वारा आत्मा को जानने का उपदेश है। व्यवहारनय पर्यायदृष्टि है, नैमित्तिक अवस्था या भावों को आत्मा की है, ऐसा बताने वाली है। इसलिए यह नय अभूतार्थ है – असत्यार्थ है। द्रव्य का सत्य निजस्वरूप नहीं बताती है, जबकि **निश्चय नय द्रव्य दृष्टि है। द्रव्य के मूल स्वरूप को अर्थात् उसके स्वभाव को पर से भिन्न बताने वाली है।**

व्यवहार नय से देखने पर यह आत्मा वर्तमान में अशुद्ध है, रागी–द्वेषी है, कर्म मल सहित है, ऐसी झलकती है।

निश्चयनय से यह आत्मा शुद्धज्ञान–दर्शनस्वरूप है, वीतराग है, विकार रहित है, परमानन्द स्वरूप है, परमात्मरूप है। **दोनों नयों से पदार्थ को जानकर निश्चय नय के द्वारा आत्मा को अनात्मा से भिन्न जानना भेद विज्ञान है।**

जैसे धान्य को निश्चय नय से देखने पर चांवल अलग भूसी अलग दिखलाई देगी। गंदे जल को देखने से जल अलग व मिट्टी अलग दिखलाई देगी। तिलों में तेल अलग व छिलका अलग दिखलाई देगा।

इसी तरह अपने ही आत्मा को देखने से निश्चयनय आत्मा को अलग और कर्मों को व शरीर को अलग दिखलाएगा। इस तरह जो **भेद विज्ञान से अपने आत्मा को शुद्ध देखता है, श्रद्धान करता है तथा अनुभव करता है, वही सम्यग्दर्शन का धारी है।**

●●●

१

मिथ्यात्व गुणस्थान

उग्ग वत तवादि जुत्तं, तव वय क्रिया स्रुतं च अन्यानं। (७)
मिच्छात दोष सहियं, मिच्छत्त गुनस्थान व्रत संजुत्तं।।६६४।।

अन्वयार्थ – (उग्ग वत तवादि जुत्तं) बहुत कठिन व्रत-तप आदि सहित हो परन्तु **(मिच्छात दोस सहियं)** मिथ्यात्व के दोष से सहित हो तो **(तव वय क्रिया-स्रुतं च अन्यानं)** तप, व्रत, क्रिया व शास्त्रज्ञान सब मिथ्याज्ञान सहित हैं **(व्रत संजुत्तं मिच्छत्त गुनस्थान)** वह व्रती होकर भी मिथ्यात्व गुणस्थान वाला है।

भावार्थ – ऊपर कही गाथाओं में सम्यग्दर्शन का स्वरूप बताया है। जिसके आपा पर का भेद विज्ञान नहीं है, जो आत्मा को पर से भिन्न अनुभव नहीं कर सकता है, वही मिथ्यात्व गुणस्थान का धारी पर्याय-बुद्धि बहिरात्मा है। उसके मिथ्यात्व कर्म व अनन्तानुबन्धी कषाय का उदय विद्यमान है।

वह चाहे बहुत बड़ा तपस्वी हो – महाव्रत या अणुव्रत का धारी हो, बहुत क्रियाकांड में मगन हो या बहुत शास्त्रों का ज्ञाता हो; तथापि मिथ्यात्व सहित उसका यह सब कार्य अज्ञानमय है। क्योंकि न तो उसको मोक्ष का, न मोक्षमार्ग का सच्चा श्रद्धान है। उसके भीतर विषय कषाय का कोई अभिप्राय अवश्य मोजूद है; जिसके वशीभूत होकर वह व्यवहार चारित्र पाल रहा है। वह आत्मिक रस के स्वाद से बाहर है। **श्री गोम्मटसार में इस गुणस्थान का स्वरूप इसप्रकार कहा है –**

''मिथ्यात्व भाव को अनुभव करने वाला जीव, विपरीत श्रद्धान सहित होता है। उसको आत्मिक सच्चा धर्म उसी तरह नहीं रुचता है, जैसे ज्वर से पीड़ित मानव को मधुर रस नहीं रुचता है।

अनादिकाल से जो जीव मिथ्यात्व गुणस्थान में पड़े हैं, उनके मिथ्यात्व

कर्म व अनन्तानुबन्धी कषाय का उदय है, वे **अनादि मिथ्यादृष्टि** हैं।

जो सम्यक्त्व को पाकर फिर मिथ्यात्व गुणस्थान में आते हैं। उनके किसी के दर्शन मोह की तीनों प्रकृति व चार अनन्तानुबन्धी कषाय इसतरह सात प्रकृति का व किसी के पाँच का ही उदय रहता है।

मिथ्यात्व गुणस्थान ही संसार के भ्रमण का मूल है।''

●●●

२

सासादन गुणस्थान

एवं च गुन विसुधं, असुह अभाव संसार सरनि मोहंधं ।(८)
अप्प गुनं नहु पिच्छदि, संसय रूवेन दुभाव संजुत्तं।।६६५।।
अप्पा परु पिच्छंतो, संसय रूवेन भावना जुत्तो।(९)
अंतराल व्रतीओ, न भुअनि न सिहरि वैसंतो।।६६६।।

अन्वयार्थ – (एवं च गुन विसुधं अप्प गुनं नहु पिच्छदि) जो कोई ऊपर कथित शुद्ध गुणों के धारी आत्मा के स्वभाव को नहीं अनुभव करता है, किन्तु **(असुह अभाव संसार सरनि मोहंधं)** अशुभ खोटे भाव मयी संसार के मार्ग के मोह में अंधा हो जाता है **(संसय रूवेन दुभाव संजुत्तं)** अथवा संशय करता हुआ दुकोटि भाव में फँस जाता है, अर्थात् **(अप्पा परु पिच्छंतो)** आत्मा व पर पदार्थ को जानता हुआ **(संसय रूवेन भावना जुत्तो)** संशयमय होकर निर्णय रहित भावों में उलझ जाता है। **(अंतराल व्रतीओ)** वह सम्यग्दर्शन का व्रतधारी सम्यग्दर्शन से गिरकर मिथ्यात्व में आते हुए बीच की अवस्था का धारी है **(न भुवनि न सिहरि वैसंतो)** न तो वह जमीन पर है न वह शिखर पर है, बीच में है। यही सासादन गुणस्थान का स्वरूप है।

भावार्थ – जब किसी उपशम सम्यग्दर्शन के धारी चौथे गुणस्थानवर्ती जीव के मिथ्यात्व का उदय तो न आया हो, किन्तु अनन्तानुबन्धी किसी

कषाय का उदय आ गया हो तो वह **सम्यग्दर्शन के शिखर से गिरता है और मिथ्यात्व की भूमि पर आ रहा है, बीच के परिणामों को सासादन गुणस्थान कहते हैं। न वहाँ सम्यक्त्व है न वहाँ मिथ्यात्व है। बीच में कैसे भाव होते हैं, सो यहाँ बताया है।**

अनन्तानुबन्धी कषाय के उदय से या तो किसी इन्द्रिय विषय की तीव्र इच्छा में या किसी अभिमान में या किसी विरोधी के साथ द्वेष भाव में या किसी विषय प्राप्ति के लिये मायाचार में फँस जाता है। खोटे संसार के मार्ग के मोह में अंधा हो जाता है या उसके भीतर संशय पैदा हो जाता है कि आत्मा है या नहीं, या अनात्मा ही आत्मा है क्या, या आत्मा का स्वरूप जैन सिद्धान्त कहता है वह ठीक है या वेदांतादि कहता है वह ठीक है।

यद्यपि न तो विपरीत मिथ्यात्व न संशय मिथ्यात्व ही होता है; किन्तु विपरीत या संशय मिथ्यात्व की तरफ गिरता हुआ कोई न कहने योग्य भाव होता है।

इसका काल अधिक से अधिक छह आवली व कम-से-कम एक समय होता है। यह नियम से मिथ्यात्व गुणस्थान में गिर पड़ता है। **गोम्मटसार में कहा है –**

''प्रथमोपशम सम्यक्त्व या द्वितीयोपशम सम्यक्त्व के काल में जब एक समय से लेकर छह आवली तक काल बाकी रहता है, तब अनन्तानुबन्धी चार कषायों में से किसी एक का उदय आने पर सम्यग्दर्शन से गिर जाता है। **सम्यक्त्व के रत्नमय पर्वत के शिखर से गिरकर मिथ्यात्व की भूमि में आ रहा है, बीच के परिणामों को सासादन गुणस्थान कहते हैं।**

आँख की टिमकार से भी कम काल एक आवली में लगता है। **समय बहुत ही सूक्ष्मकाल है।** एक आँख की टिमकार में असंख्यात समय हो जाते हैं।''

संसय रूव सहावं, मिच्छा कुन्यान न्यान जानंतो।(१०)
व्रत संजमं च धरंतो, सासादन गुनठान व्रत संजुत्तो।।६६७।।

अन्वयार्थ – (संसय रूव सहावं) संशय का ऐसा स्वभाव है कि उसके उत्पन्न होने पर **(मिच्छा कुन्यान न्यान जानंतो)** ज्ञान को मिथ्या/कुज्ञान रूप जानो **(व्रत संजमं च धरंतो)** व्रत एवं संयम का धारी व्रतों से संयुक्त होने पर भी **(सासादन गुनठान व्रत संजुत्तो)** सासादन गुणस्थान में आ जाता है।

भावार्थ – व्रत एवं संयम के धारी जीव को ज्ञान-स्वभाव में संशय उत्पन्न हो जाता है। सासादन गुणस्थान में अनन्तानुबन्धी कषाय का उदय हो जाता है, जिससे उस जीव के यद्यपि व्रत एवं संयम का संयोग देखा जाता है; तथापि उसका ज्ञान मिथ्या एवं कुज्ञानरूप जानो।

अनन्तानुबन्धी कषाय, सम्यक्त्व एवं चारित्र दोनों की घातक है।

मिथ्यादृष्टि और सासादन सम्यक्दृष्टि दोनों के विपरीतार्थवेदन में बहुत अन्तर है, क्योंकि मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में अतत्त्वार्थ श्रद्धान व्यक्त एवं सासादन गुणस्थान में अव्यक्त हुआ करता है।

●●●

३

मिश्र गुणस्थान

मिस्रं मिश्र सहावं, षट दर्सन सुभाव संजुत्तो।(११)
अप्पा परु जानंतो, जिनोक्त दंसन न्यान चरन बूझंतो।।६६८।।

अन्वयार्थ – (मिस्रं मिश्र सहावं) मिश्र गुणस्थान का सम्यक्त्व-मिथ्यात्व का मिला हुआ स्वभाव है **(षट् दर्सन सुभाव संजुत्तो)** ऐसा मिश्र गुणस्थानधारी छहों दर्शनों के स्वभावों को जानता है **(जिनोक्त दंसन न्यान चरन बूझंतो)** तथा जैन शास्त्र में कहे हुए जैन दर्शन के ज्ञान को भी रखता है **(अप्पा परु जानंतो)** आत्मा और पर को भी जानता है, परन्तु उसका श्रद्धान मिला हुआ होता है।

न्याइक बौध संजुत्तो, चारवाक सिव भट्ट पिच्छंतो।(१२)
षट दर्सन मिस्रंतो, दव्व काय तत्त जानंतो।।६६९।।

अन्वयार्थ – (न्याइक बौध संजुत्तो) मिश्र गुणस्थानधारी जैन दर्शन के साथ-साथ नैयायिक, बौद्ध दर्शन को जानता है या **(चारवाक सिव भट्ट पिच्छंतो)** चार्वाक दर्शन, शिवमत या सांख्य दर्शन तथा भट्ट के मीमांसक मत को जानता है **(षट दर्सन मिस्रंतो)** छहों दर्शनों में से छहों के या किसी दो, तीन, चार, पाँच के मिश्र भाव को रखता हुआ **(दव्व काय तत्त जानंतो)** तप, व्रत पालता है व पंचास्तिकाय व सात तत्त्व जानता है या छह कायों के जीवों को पहचानता है।

व्रत क्रिया संजुत्तो, तव संजम मिच्छ भाव पिच्छंतो।(१३)
कुऔधि कुरिधि संजुत्तो, दधि गुड मिस्र भाव मिस्रंतो।।६७०।।

अन्वयार्थ – (व्रत क्रिया संजुत्तो) व्रत व चारित्र पालता है **(तव संजम)** तप व संयम धारण किए हुए हैं तथापि **(मिच्छ भाव पिच्छंतो)** मिथ्यात्व के भाव सहित हैं **(कुऔधि कुरिधि संजुत्तो)** उसे कुअवधिज्ञान व कुऋद्धियाँ भी होती है **(दधि गुड मिस्र भाव मिस्रंतो)** दही गुड़ के मिश्र स्वाद के अनुसार उसका भाव सम्यक्त्व व मिथ्यात्व से मिला हुआ होता है।

रागमय मोह सहिओ, मिच्छा कुन्यान सयल संजुत्तो।(१४)
पुन्य सहावे उत्तो, रागमय मिस्र गुनस्थान संजुत्तो।।६७१।।

अन्वयार्थ – (रागमय मोह सहिओ) वह राग और मोह सहित होता है **(मिच्छा कुन्यान सयल संजुत्तो)** मिथ्यादर्शन व मिथ्याज्ञान सहित होता है **(पुन्य सहावे उत्तो)** पुण्यमयी शुभ कार्यों में लीन होता है **(रागमय मिस्र गुनस्थान संजुत्तो)** रागमयी होता है, ऐसा मिश्र गुणस्थानधारी होता है।

अन्वयार्थ – यहाँ चार गाथाओं में मिश्र गुणस्थान का स्वभाव बताया है। वर्तमान काल के मानवों की अपेक्षा मिश्र भाव को दिखलाते हुए

तारणस्वामी ने कहा है कि जो कोई जैन दर्शन के साथ-साथ बौद्ध, नैयायिक, चार्वाक, सांख्य तथा पूर्व या उत्तर मीमांसा का भी श्रद्धान रखता है – जैन के साथ अन्य पाँच का या चार का या तीन का या दो का या किसी एक का श्रद्धान हो, वह मिश्र गुणस्थान है।

जैन शास्त्रानुसार व्रत, तप, क्रिया पालते हुए पर्यायबुद्धि रूपी मिथ्यात्व भाव भी सम्यक्त्व के साथ ही है, वह मिश्र गुणस्थान है।

अवधिज्ञानी व ऋद्धिधारी कोई साधु चौथे या छठे या पाँचवें गुणस्थान से गिरकर मिश्र में आ जाता है। तब उसका अवधिज्ञान व ऋद्धि लाभ भी मिश्र श्रद्धान सहित हो जाता है। सुअवधि व सुऋद्धि लाभ नहीं रहता है।

जैसे दही व गुड़ का स्वाद मिला हुआ रहता है, वैसे सम्यक्त्व मिथ्यात्व का मिला हुआ कोई अनुभवगम्य श्रद्धान होता है। कोई जैन धर्मानुसार शुभ कार्य करता हो, परन्तु संसार का राग या मोह भाव वैराग्य के साथ में आ जावे व सच्चे ज्ञान के साथ मिथ्याज्ञान हो, वह सब मिश्र गुणस्थान का स्वरूप जानना चाहिये। इस गुणस्थान में मिश्र दर्शनमोह का उदय होता है। अनन्तानुबन्धी कषाय तथा मिथ्यात्व का उदय नहीं रहता है। **श्री गोम्मटसार में इसका स्वरूप बताया है –**

''जैसे दही और गुड़ को मिलाने पर मिला हुआ स्वाद आता है, अलग-अलग दोनों का स्वाद नहीं आ सकता है, उसी तरह सम्यक्त्व और मिथ्यात्व का मिला हुआ भाव मिश्रभाव है।

● यह तीसरा गुणस्थान एक अन्तर्मुहूर्त से अधिक नहीं रहता है।

● यह मुनिव्रत व श्रावक के व्रत को नहीं ग्रहण करता, यदि बाहरी में पहले से हो तो वे यथार्थ नहीं होते हैं।

● इस गुणस्थान में किसी आयु कर्म का भी बंध नहीं होता है। ● न वहाँ मरण ही होता है। ● सम्यग्दर्शन या मिथ्यादर्शन में आकर ही यह जीव मरता है।

● सादि मिथ्यात्वी भी चढ़कर मिश्र गुणस्थानी हो सकता है।

● चौथे, पाँचवें, छठे से गिर करके भी यह गुणस्थान होता है।

● अनन्तानुबंधी कषायों के उदय न होने से इसकी प्रवृत्ति तीव्र अन्याय रूप या तीव्र रागरूप या तीव्र पापरूप नहीं होती है।

● यह भद्र परिणामी होता है। परिणामों की जाति शुद्ध नहीं रहती है। निर्मल पानी में कुछ मिट्टी मिला दी जाय, ऐसी गंदली परिणति हो जाती है।''

●●●

४

अविरतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान

अविरै सम्माइट्ठी, जानै पिच्छेई सुध संमत्तं।(१५)
षट दव्व पंच कायं, नव पयत्थ सप्त तत्तु पिच्छंतो।।६७२।।

अन्वयार्थ – (अविरै सम्माइट्ठी)अविरत सम्यग्दृष्टि जीव चौथे गुणस्थानवर्ती **(सुध संमत्तं जानै पिच्छेई)** शुद्ध या निश्चय सम्यग्दर्शन का अनुभव करता है **(षट दव्व पंच कायं नव पयत्थ सप्त तत्तु पिच्छंतो)** छह द्रव्य, पाँच अस्तिकाय, नव पदार्थ तथा सात तत्त्व पर श्रद्धान रखता है।

भावार्थ – चौथे गुणस्थान का स्वरूप यह है कि व्रत–श्रावक के व मुनि के न होते हुए भी, संयम का नियम न होते हुए भी, जहाँ शुद्ध सम्यग्दर्शन हो वह अविरत सम्यग्दर्शन है। **इस गुणस्थानधारी को आत्मा और अनात्मा का सच्चा भेदविज्ञान होता है। वह शुद्ध आत्मा को पहचानता है, आत्मा के रस का स्वाद भी लेता है।**

व्यवहार में उसको छह द्रव्य, पाँच अस्तिकाय, नव पदार्थ व जीवादि सात तत्त्वों का जिनेन्द्र के आगम के अनुसार दृढ़/पक्का श्रद्धान होता है।

अप्प सरूवं पिच्छदि, वर दंसन न्यान चरन पिच्छंतो।(१६)
सहकारे तव सुधं, हेय उपादेय जानए निस्चं।।६७३।।

अन्वयार्थ – सम्यग्दृष्टि जीव **(अप्प सरूवं पिच्छदि)** आत्मा के स्वरूप का अनुभव करता है **(वर दंसन न्यान चरन पिच्छंतो)** निश्चय सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान व सम्यक्चारित्र का अनुभव करता है। **(सहकारे तव सुधं)** सम्यग्दर्शन की सहायता से शुद्ध तप करता है **(हेय उपादेय निस्चं जानए)** त्यागने योग्य और ग्रहण करने योग्य तत्त्व को निश्चय से यथार्थ जानता है।

भावार्थ – सम्यग्दृष्टि जीव को भेद विज्ञान होता है, इसलिए वह निज आत्मा के स्वभाव को ग्रहण कर लेता है और उसके सिवाय सर्व पर–द्रव्य, पर–गुण, पर–पर्याय का त्याग कर देता है। वह जानता है कि निश्चय रत्नत्रय स्वरूप आत्मा ही है।

इसलिए सर्व पर–पदार्थों से रागद्वेष त्याग कर परम समता भाव में लीन होकर निश्चिन्त होकर निज आत्मा का ही अनुभव करता है। वह तप भी आत्मशुद्धि के लिए ही करता है। वह भूलकर भी निदान नहीं करता है।

सुधं सुध सहावं, देवं देवाधि सुध गुर धम्मं।(१७)
जानै निय अप्पानं, मल मुक्कं विमल दंसनं सुधं।।६७४।।

अन्वयार्थ – (सुधं सुध सहावं देवाधिदेवं) सम्यग्दृष्टि जीव वीतराग व शुद्ध स्वभावधारी देवों के देव श्री अर्हंत–सिद्ध भगवान को देव **(सुध गुर धम्मं)** शुद्ध निर्दोष परिग्रह त्यागी को गुरु और वीतराग विज्ञानमयी शुद्ध धर्म को धर्म निश्चय रखता है **(निय अप्पानं जानै)** अपने आत्मा को पहचानता है **(मल मुक्कं विमल सुधं दंसनं)** उसके ही पच्चीस मल दोष रहित निर्मल शुद्ध सम्यग्दर्शन होता है।

भावार्थ –सम्यग्दृष्टि जीव ही सच्चे–देव–गुरु धर्म को पहचानता है। आत्मा में आत्मरूप रहने वाले अर्हंत–सिद्ध को देव, आत्मरमी निर्ग्रंथ को साधु, आत्मानुभव को धर्म जानता है, **अपने आत्मा को परमात्मा के समान निर्विकार ज्ञातादृष्टा अनुभव करता है,** सम्यक्त्व को २५ दोषों से बचाता है। शुद्ध सम्यग्दर्शन का आचरण करता है।

पंचाचार वियानदि, परिनय सुध भाव संमत्तं।(१८)
जिनवयनं सद्दहनं, सद्दहनं सुध ममल संमत्तं।।६७५।।

अन्वयार्थ – (पंचाचार वियानदि) सम्यग्दृष्टि जीव पाँच प्रकार के आचार को समझता है **(परिनय सुध भाव संमत्तं)** शुद्ध भाव की श्रद्धा में परिणमन करता है **(जिन वयनं सद्दहनं)** श्री जिनेन्द्र की वाणी का श्रद्धान रखता है **(सुध ममल संमत्तं सद्दहनं)** आत्मानुभूति रूप निश्चय निर्मल सम्यक्त्व का वह श्रद्धानी होता है।

भावार्थ – अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, परिग्रह त्याग, इन पाँच व्रतों के आचरण से जीव का हित होता है। या दर्शन, ज्ञान, चारित्र, तप, वीर्य, इन पाँच आचारों को पालना चाहिये; ऐसा दृढ़ श्रद्धान सम्यग्दृष्टि को होता है। उसके श्री जिनेन्द्र के आगम का पक्का विश्वास होता है। वह शुद्ध आत्मा के रमण में रुचि रखता हुआ उसी का अनुभव करता रहता है। **वह यह भले प्रकार समझता है कि निश्चय सम्यग्दर्शन वहीं पर है, जहाँ निर्मल आत्मा के आनन्द का स्वाद लिया जावे।**

रागादि दोस विरयं, असुध परिनाम भाव विरयंतो।(१९)
विरइ पमाइ सव्वं, विरयं संसार सरनि मोहंधं।।६७६।।

अन्वयार्थ – (रागादि दोस विरयं) सम्यग्दृष्टि अंतरंग में सर्व औपाधिक रागादि दोषों से विरक्त होता है **(असुध परिनाम भाव विरयंतो)** शुद्धोपयोग के सिवाय सर्व अशुद्ध परिणामों से उदासीन होता है **(सव्वं पमाइ विरइं)** सर्व प्रमाद भावों से वैरागी होता है। **(संसार सरनि मोहंधं विरयं)** संसार मार्ग में पटकने वाले अज्ञानमय मोह से शून्य होता है।

भावार्थ – मिथ्यात्व व अनन्तानुबन्धी कषाय के उदय न होने से सम्यग्दृष्टि को अपने शुद्ध आत्मा की व मोक्ष की ऐसी दृढ़ रुचि हो जाती है कि उसको कर्मजनित सर्व रागादि दोष रोग के समान झलकते हैं। शुद्ध आत्मिक स्वभाव की परिणति में रमण करना ही उसका क्रीड़ा वन हो जाता है। वह संसार की किसी भी पर्याय–इंद्र, चक्रवर्ती आदि का मोही नहीं रहता है। वह सर्व प्रमाद भावों से विरक्त रहता है। (ब्र. शीतलप्रसादजी

ने अविरतसम्यक्त्व गुणस्थान में प्रमाद की जो विशेष चर्चा की है; वह सहीरूप से प्रमत्तविरत नाम के छठवें गुणस्थान में लागू होती है; क्योंकि संज्वलन कषाय एवं नौ नोकषाय के तीव्र उदय से होनेवाले कषाय परिणामों को प्रमाद कहा जाता है।

स्थूल रूप से प्रथम गुणस्थान से छठवें गुणस्थानवर्ती सभी जीवों को प्रमादी कहते हैं; यह भी एक विवक्षा है। चौथे गुणस्थानवर्ती जीव जब शुद्धोपयोगी होता है, तब अध्यात्म की अपेक्षा से सम्यग्दृष्टि को अप्रमादी भी कहा गया है। जब अविरत सम्यग्दृष्टि जीव शुद्धोपयोग में नहीं रहेगा तब उसे प्रमत्त कहते हैं; यह विवक्षा टीकाकार की रही है।

टीकाकार की विवक्षा समझते हुए विषय को जानने का हमें प्रयास करना चाहिए।) गोम्मटसार आदि ग्रन्थों में छठवें गुणस्थान में ही १५ प्रमादों की विवक्षा ली है। प्रमाद के मूल भेद प्रन्द्रह हैं –

चार विकथा – स्त्री, भोजन, देश, राज्य; (चार–विकथा) पाँच इन्द्रिय (इन्द्रिय के विषय स्पर्श, रस, गंध, वर्ण व शब्द) (क्रोधादि) चार कषाय, निद्रा व स्नेह। इसके उत्तर भेद अस्सी हो जाते हैं। ४ ह्न ५ ह्न ४ ह्न १ ह्न १ = ८०। हर एक प्रमाद भाव में पाँच भावों का संयोग होता है।

एक कोई कथा, एक कोई इन्द्रिय, एक कोई कषाय, निद्रा तथा स्नेह। जैसे किसी ने पुष्प सूंघने का भाव किया – इस प्रमाद भाव में भोजन कथा, घ्राण इन्द्रिय, लोभ कषाय, निद्रा तथा स्नेह गर्भित हैं। इन्द्रियों के विषय व कषाय के विकारों से पूर्ण अरुचि को रखने वाला सम्यक्त्वी जीव होता है।

मिच्छात समय मिच्छा, समय प्रकृति मिच्छ सभावं।(२०)
कषायं अनंतानं, तित्तंति प्रकृति सप्त सभावं।।६७७।।

अन्वयार्थ – (मिच्छात समय मिच्छा समय प्रकृति मिच्छ सभावं) मिथ्यात्वकर्म, सम्यक्त्व–मिथ्यात्वकर्म व सम्यक्त्वप्रकृतिकर्म–इनके उदय को **(कषायं अनंतानं)** व चार अनन्तानुबन्धी कषायों के उदय को **(सप्त प्रकृति सभावं तित्तंति)** इसतरह सात प्रकृतियों के उदय को सम्यक्त्वी त्याग देता है।

भावार्थ – सम्यग्दर्शन की घातक सात कर्म की प्रकृतियाँ हैं। ● उपशम सम्यक्त्वी के इनका उपशम रहता है। ● क्षायिक सम्यक्त्वी के इनका क्षय करता है। ● क्षयोपशम सम्यक्त्वी के केवल सम्यक्त्व प्रकृति का उदय होता है, शेष छह का उपशम। (सम्यक्प्रकृति का उदय) या चार का क्षय, दो का उपशम। (सम्यक्प्रकृति का उदय) या पाँच का क्षय, एक का उपशम या छह का क्षय; एक का उदय होता है। (यह कृतकृतवेदक में सम्भव है)।

इसीलिये **अविरत सम्यक्त्वी मोक्ष का पक्का श्रद्धावान होता है।**

क्षयोपशम सम्यक्त्वी के सम्यक्त्व प्रकृति के उदय से केवल कुछ मलिनता सम्यक्त्व भाव में रहती है।

क्षायिक व औपशमिक सम्यक्त्व निर्मल होते हैं।

उपशम सम्यक्त्व की स्थिति जघन्य व उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त ही है। क्षयोपशम की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट स्थिति छासठ सागर है। क्षायिक सम्यक्त्व की स्थिति अनन्तकाल है। मोक्ष जाने की अपेक्षा वह अधिक से अधिक और तीन भव लेकर मोक्ष को चला जायेगा।

जिन वयनं सद्दहनं, सद्दहै अप्प सुध सभावं।(२१)
मति न्यान रूव जुत्तं, अप्पा परमप्प सद्दहै सुधं।।६७८।।

अन्वयार्थ – (जिन वयनं सद्दहनं) सम्यग्दृष्टि को जिनवाणी का दृढ़ श्रद्धान होता है **(सद्दहै अप्प सुध सभावं)** वह आत्मा के शुद्ध स्वभाव का श्रद्धान रखता है **(अप्पा परमप्प सुधं सद्दहै)** आत्मा को परमात्मा के समान शुद्ध श्रद्धान में लेता है **(मति न्यान रूवं जुत्तं)** वह मतिज्ञान, श्रुतज्ञान व कोई-कोई साथ ही रूपी पदार्थों को जानने वाले अवधिज्ञान सहित भी होता है।

भावार्थ – व्यवहार में जिनवाणी के द्वारा कथन किये हुए तत्त्वों का सम्यक्त्वी दृढ़ श्रद्धानी होता है। निश्चय से वह अपने ही आत्मा के शुद्ध स्वरूप का श्रद्धानी होता है। सम्यक्त्वी चारों गतियों में होता है।

देव व नारकी सर्व तीन ज्ञानधारी सम्यक्त्वी होते हैं।

मानव व पशुओं के साधारणतया मतिश्रुत दो ज्ञान होते हैं। किसी-किसी के अवधिज्ञानावरण के क्षयोपशम से अवधिज्ञान भी पैदा हो जाता है।

तीर्थंकर जन्म से ही तीन ज्ञानधारी होते हैं। इस तत्त्वज्ञानी के भीतर मिथ्याज्ञान बिलकुल नहीं रहता है। वह इन्द्रियों के द्वारा व मन के द्वारा जो कुछ जानता है, उसके भीतर हेय-उपादेय बुद्धि करके मात्र एक निज आत्मा को ही उपादेय मानता है।

आरति रौद्रं च विरयं, धम्म ध्यानं च सद्दहै सुधं।(२२)
अविरय सम्माइट्ठी, अविरत गुनठान अव्रितं सुधं।।६७९।।

अन्वयार्थ – (आरति रौद्रं च विरयं) सम्यक्त्वी भव्य जीव चार प्रकार के आर्तध्यान व चार प्रकार के रौद्रध्यान से, जो संसार के कारण हैं व परिणामों को मलिन रखने वाले हैं, उनसे विरक्त रहता है **(सुधं धम्म ध्यानं च सद्दहै)** शुद्धोपयोग रूप धर्म ध्यान की ही रुचि रखता है **(अविरय सम्माइट्ठी)** ऐसा पाँच व्रतों की प्रतिज्ञा रहित सम्यग्दृष्टि **(सुधं अव्रितं)** भावों की अपेक्षा शुद्ध परन्तु व्रत रहित होता है **(अविरत गुनठान)** क्योंकि (वह) अविरत गुणस्थान में है।

भावार्थ – अविरत सम्यग्दर्शन गुणस्थान में अप्रत्याख्यानावरण कषायों का उदय होता है; जिससे वह चारित्र धारने को उत्सुक होने पर भी चारित्र को धार नहीं सकता है। वह संसार, शरीर, भोगों से विरक्त होता है, इससे शारीरिक व मानसिक कष्टों के भीतर उलझता नहीं और न सांसारिक सम्पत्ति के लिये हिंसादि पाप कर्मों की अन्यायपूर्वक भावना करता है।

वह आर्तध्यान व रौद्रध्यान से विरक्त होता है। उसको धर्म की चर्चा सुहाती है, वह धर्मध्यान का प्रेमी होता है। शुद्ध आत्मा को अनुभव में लाकर आत्मरस पीने का दृढ़ रुचिवान होता है। श्रद्धानअपेक्षा शुद्ध है, चारित्र अपेक्षा प्रतिज्ञारहित है, इसी से अविरत सम्यग्दर्शन का धारी हो रहा है। **श्री गोम्मटसार में कहा है –**

''जो इन्द्रियों के विषयों का न तो त्यागी है और न त्रस-स्थावर प्राणियों की हिंसा का त्यागी है, परन्तु जो जिनेन्द्र कथित तत्त्वों का दृढ़

श्रद्धानी है, वही अविरत सम्यग्दृष्टि है। अपि शब्द से यह सूचित होता है कि वह निरर्थक न तो इन्द्रियों की प्रवृत्ति करता है न हिंसादि पाप करता है तथा उसमें चार गुण भीतर झलकते हैं –

(१) **प्रशम**–शांत भाव, (२) **संवेग**–धर्म से प्रेम, संसार से वैराग्य, (३) **अनुकम्पा**–प्राणी मात्र पर दया, (४) **आस्तिक्य**–तत्त्वों पर पूर्ण विश्वास, लोक–परलोक, पुण्य–पाप, की श्रद्धा। **यद्यपि वह व्रती नहीं है; तथापि व्रती होने की भावना रखता हुआ बहुत सम्हाल के प्रवृत्ति करता है।**

●●●

५

देशविरत गुणस्थान

देस व्रिति संजुत्तं, एको उद्देस वय गहई सुधं।(२३)
अविरय गुन संजुत्तं, स्रुत न्यानं च भाव उववंनं।।६८०।।

अन्वयार्थ – (देस व्रिति संजुत्तं) जो सम्यक्त्वी जीव अणुव्रतों को धारता है **(एको उद्देस वय सुधं गहई)** एकदेश शक्ति के अनुसार व्रतों को निर्दोष पालता है **(अविरय गुन संजुत्तं)** तथापि व्रत रहित भाव को भी साथ में लिये हुए हैं **(स्रुत न्यानं च भाव उववंनं)** परन्तु जो भाव श्रुतज्ञान विशेषपने प्राप्त किये हुए हैं। अर्थात् जिसका आत्मानुभव बढ़ गया है, वही पंचम गुणस्थानवर्ती देशव्रती श्रावक है।

भावार्थ – जब अप्रत्याख्यानावरण कषाय का उपशम हो जाता है, तब सम्यक्त्वी प्रतिज्ञावान होता है। वह अहिंसादि पाँचों व्रतों को पूर्ण न ग्रहण करके एकदेश पालने लगता है।

जितने अंश में पाँच पापों का त्यागी होता है, उतने अंश में व्रती है, जितने अंश का त्यागी नहीं होता है, उतने अंश का अव्रती हैं।

कषायों की मलिनता विशेष दूर हो जाने से यह सम्यक्त्वी जीव चौथे दरजे की अपेक्षा अधिक शुद्धात्मा का अनुभव कर सकता है।

दंसन वय सामाई, पोसह सचित्त रायभत्तीए।(२४)
बंभारंभ परिग्गह, अनुमनु उद्दिस्ट देस विरदो य।।६८१।।

अन्वयार्थ – (दंसन वय सामाई) ग्यारह प्रतिमाएँ या श्रेणियाँ इस पंचम गुणस्थान में होती हैं। १. दर्शन प्रतिमा, २. व्रत प्रतिमा, ३. सामायिक प्रतिमा, **(पोसह सचित रायभत्तीए)** ४. प्रोषधोपवास प्रतिमा, ५. सचित्तत्याग प्रतिमा, ६. रात्रिभुक्तित्याग प्रतिमा, **(बंभारंभ परिग्गह)**, ७. ब्रह्मचर्य प्रतिमा, ८. आरम्भत्याग प्रतिमा, ९. परिग्रहत्याग प्रतिमा, **(अनुमनु उद्दिस्ट–देस विरदो य)** १०. अनुमतित्याग प्रतिमा, ११. उद्दिष्टत्याग प्रतिमा। ये सर्व देशव्रती हैं।

भावार्थ – दर्शन प्रतिमा से चारित्र का धारना प्रारंभ होता है। फिर प्रत्येक श्रेणी में चारित्र पहला बना रहता है और कुछ बढ़ जाता है। इस तरह बढ़ते–बढ़ते ग्यारहवीं प्रतिमा में वह साधु के निकट पहुँच जाता है।

ऐलक एक लंगोटी मात्र रखते हैं, उसके त्याग देने से निर्ग्रंथ मुनि हो जाते हैं। इन प्रतिमाओं का विस्तारपूर्वक कथन गाथा ३०१ से ३३७ पर्यंत पहले किया जा चुका है।

पंच अनुव्वयाइं, व्रत तप क्रियं च सुध सभावं।(२५)
न्यान सहावदि सुधं, सुधं च अप्प परम पदविंदं।।६८२।।

अन्वयार्थ – (पंच अनुव्वयाइं) श्रावक पाँच अणुव्रतों का धारी होता है **(व्रत तप क्रियं च सुध सभावं)** शुद्ध भावों के साथ यह श्रावक व्रत, तप व क्रिया का आचरण पालता है **(न्यान सहावदि सुधं)** उसका ज्ञान स्वभाव व रत्नत्रयमयी भाव शुद्ध होता है **(सुधं च अप्प परम पदविंदं)** वह शुद्ध आत्मा को व परम पद मोक्ष का अनुभव करता है।

भावार्थ – अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, परिग्रह त्याग – इनका एकदेश पालना; अणुव्रत है। संकल्पी हिंसा त्यागना, स्थूल असत्य व चोरी त्यागना, स्व–स्त्री में संतोष रखना व सम्पत्ति का प्रमाण कर लेना; ऐसे पाँच अणुव्रतों को यह श्रावक शुद्ध सम्यक्त्व भाव से पालता है।

किसी लौकिक फल की इच्छा नहीं रखता है। उसका सर्व व्रत, उपवास, खानपानादि आचरण शुद्ध भावों के साथ मायाशल्य से रहित होता है।

रत्नत्रय धर्ममयी शुद्ध आत्मा का वह प्रेमी होता है और मोक्ष के हेतु से आत्मध्यान का अभ्यास बढ़ाता रहता है।

अप्पा अप्प सरुवं, विरइ मिच्छात दोस संकाई।(२६)
अवयास सुध धरनं, मन रोहो निय अप्पानं।।६८३।।

अन्वयार्थ – (अप्पा अप्प सरुवं) आत्मा को आत्मिक स्वरूपमय निश्चय करना **(विरइ मिच्छात दोस संकाई)** मिथ्यात्वादि दोष व शंका आदि से विरक्त रहना **(अवयास सुध धरनं)** अपने आत्मा के क्षेत्र को संकल्प-विकल्पों से रहित शुद्ध धारण करना **(मनरोहो निय अप्पानं)** मन को रोककर अपने आत्मा को अनुभवना यह देशव्रती का मुख्य कार्य है।

भावार्थ – देशव्रती श्रावक जब बाहर से बारह व्रतों का साधन करता है, तब अंतरंग में वह अपने भीतर से सर्व रागद्वेष को व सर्व शंकादि दोषों को दूर कर शुद्ध आत्मा का ध्यान करने का दृढ़ता से अभ्यास करता है।

मन वयन काय सुधं, उक्तं सभाव निस्च जिनवयनं।(२७)
दत्तं पत्त विसेषं, एको उद्देस देशव्रत ग्रहनं।।६८४।।

अन्वयार्थ – (मन वयन काय सुधं) मन, वचन, काय की शुद्धतापूर्वक **(उक्तं सभाव निस्च जिनवयनं)** जो जिन वचनों के कहे अनुसार आत्मा का स्वभाव निश्चय करके भावना करता है **(दत्तं पत्त विसेषं)** जो दातार भी है व पात्र भी है **(एको उद्देस देसव्रत ग्रहनं)** ऐसा श्रावक एकदेश व्रतों का धारी है।

भावार्थ – पंचम गुणस्थानवर्ती श्रावक जिन वचनों को भले प्रकार श्रद्धापूर्वक मानने वाला है अर्थात् जिनवाक्यानुसार स्वतत्त्व-परतत्त्व को जानकर निश्चय करने वाला है। पाँच अणुव्रत व सात शीलों को पालता है। ग्यारह प्रतिमा द्वारा चारित्र की उन्नति व आत्मानुभव की उन्नति करता

है। **यह श्रावक जहाँ तक परिग्रह का स्वामी है, आरंभ कार्य में लीन है, वहाँ तक पात्रों को दान भी देता है।**

इसलिए दातार है तथा यह मध्यम पात्र है, दान लेने के योग्य है। पहली प्रतिमा से लेकर छठी प्रतिमा तक मध्यम पात्रों में जघन्य पात्र है। सातवीं, आठवीं, नौवीं प्रतिमाधारी मध्यम में मध्यम पात्र हैं। दसवीं, ग्यारहवी प्रतिमाधारी मध्यम में उत्तम पात्र है।

आरंभत्यागी श्रावक से क्षुल्लक ऐलक तक मुख्यता से ज्ञानदान व अभयदान करते हैं। शेष सर्व श्रावक चारों ही प्रकार का दान करते हैं।

श्री गोम्मटसार में इस गुणस्थान का स्वरूप यह है –

''जो जिनेन्द्र देव में व उनके वाक्यों में अपूर्व श्रद्धा को रखने वाला है, त्रस की हिंसा से विरक्त है, उसी समय स्थावर की हिंसा से विरक्त नहीं है; इसलिए उसको विरताविरत कहते हैं। यह श्रावक संकल्पी हिंसा का त्यागी है। **आरंभी हिंसा का त्यागी सातवीं तक नहीं है। आगे आरम्भी का भी त्यागी है। जहाँ तक वस्त्र का पूर्ण त्याग नहीं है, वहाँ तक पूर्ण आरम्भी हिंसा का त्याग नहीं है।** इसीलिए इसको **देशव्रती** कहते हैं।''

●●●

६

प्रमत्तविरत गुणस्थान

अविरय भाव संजुत्तं, अनुवय भाव सुध संधरनं।(२८)
धम्मं ज्ञानं झायदि, मतिस्रुत न्यान संजुदो सुधो।।६८५।।

अन्वयार्थ – (अविरय भाव संजुत्तं) प्रमत्तविरत गुणस्थानवर्ती साधु अविरत भाव से विरक्त हैं महाव्रती हैं **(अनुवय भाव सुध संधरनं)** बाहरी व्रतों के अनुकूल शुद्ध अहिंसक व निर्ममत्व भाव को भले प्रकार धरने वाला है। **(सुधो मतिस्रुत न्यान संजुदो)** शुद्ध मतिज्ञान तथा श्रुतज्ञान को रखता है **(धम्मं ज्ञानं झायदि)** और धर्मध्यान को ध्याता है।

भावार्थ – छठवें गुणस्थानवर्ती साधु प्रत्याख्यानावरण कषायों के उपशम से सर्व परिग्रह रहित निर्ग्रंथ है। हिंसा, असत्य, स्तेय, अब्रह्म व परिग्रह – इन पाँच पापों का पूर्ण त्यागी है। पाँच इन्द्रिय व मन सम्बन्धी तथा त्रस–स्थावर के वध सम्बन्धी, ऐसे बारह प्रकार का अविरत भाव, जिसके परिणामों से चला गया है, जो अन्तरंग में शुद्ध आत्मा के रमण में बर्तता है, जिसका मतिज्ञान व श्रुतज्ञान सम्यग्दर्शन सहित शुद्ध है व जो निरन्तर धर्म का ध्यान करता है।

अवहि उवन्नो भावो, वय गहनं भाव संजदो सुधो।(२९)
वैरागं संसार सरीरं, भोगं तिजंति भोग उवभोगं।।६८६।।

अन्वयार्थ – (अवहि भावो उवन्नो) जिसको अवधिज्ञान उत्पन्न हो सकता है **(वय गहनं भाव संजुदो सुधो)** जो महाव्रतों को ग्रहण करता हुआ शुद्ध भाव संयमी है **(वैरागं संसार सरीरं भोगं)** जो संसार, शरीर तथा पंचेन्द्रिय के भोगों से विरक्त है **(भोग उपभोगं तिजंति)** अतएव सर्व भोग व उपभोगों का त्यागी है।

भावार्थ – यह महाव्रती साधु व्यवहार में पाँच महाव्रतों को पालता हुआ अन्तरंग में भावों की शुद्धतापूर्वक स्वरूपाचरण चारित्र में लवलीन रहता है। जैसा इसका भेष है, वैसा ही इसका भाव है। यह संसार का लोभ त्यागकर मुक्ति का प्रेमी है। **शरीर को अपवित्र नाशवंत जानकर आत्मा को ऐसे शरीर के वास से छुड़ाना चाहता है। इसने इन्द्रियों के भोगों को अतृप्तिकारी जानकर उनका सम्बन्ध त्याग दिया है।**

ऐसे पूर्ण वीतरागी साधु के ही अवधिज्ञानावरण कर्म का क्षयोपशम होकर अवधिज्ञान की प्राप्ति हो सकती है।

संमत्त सुध चरनं, अवहिं चिंतेइ सुध ससरूवं।(३०)
अप्पा परमप्पानं, परमप्पा निम्मलं सुधं।।६८७।।

अन्वयार्थ – (संमत्त सुध चरनं) यह साधु शुद्ध सम्यग्दर्शन के आचरण को करने वाला है **(अवहिं चिंतेइ सुध ससरूवं)** अवधिज्ञान का चिंतवन

करने वाला है तथा शुद्ध आत्मा के स्वरूप का अनुभव करने वाला है। **(अप्पा परमप्पानं)** आत्मा को परमात्मा रूप जानकर **(परमप्पा निम्मलं सुधं)** निर्मल शुद्ध परमात्मा का अनुभव करता है।

भावार्थ – यह साधु निश्चय सम्यग्दर्शन से विभूषित होता है। कभी अवसर पाकर अवधिज्ञान को जोड़कर पूर्व व आगामी भवों की बातें दूसरों को बता देता है। शुद्ध आत्मस्वरूप का भले प्रकार अनुभव करने वाला है, अपने आत्मिक रस में लीन है।

ग्रंथं बाहिर भिंतर, मुक्कं संसार सरनि सभावं।(३१)
महावय गुन धरनं, मूलगुनं धरन्ति सुध भावेन।।६८८।।

अन्वयार्थ – (संसार सरनि सभावं) संसार के मार्ग में भ्रमण कराने वाले **(बाहिर भिंतर ग्रंथं मुक्कं)** बाहरी–भीतरी परिग्रह को त्यागकर **(महावय गुन धरनं)** महाव्रतों के गुणों को धरने वाले हैं तथा **(सुध भावेन मूल गुनं धरन्ति)** शुद्ध भावों से मूलगुणों को पालते हैं।

भावार्थ – यह साधु संसार से पूर्ण विरक्त हैं, तब ही संसार के कारण ऐसे ग्रन्थ अर्थात् परिग्रह को त्यागकर निर्ग्रंथ हो गए हैं।

मिथ्यात्व, क्रोध, मान, माया, लोभ, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा और स्त्री, पुरुष, नपुंसक वेद यह चौदह प्रकार के अंतरंग परिग्रह हैं। क्षेत्र, मकान, गोधन, धान्य, चाँदी, सोना, दासी, दास, कपड़े, बर्तन – यह दस प्रकार के बाहरी परिग्रह हैं।

ऐसे २४ प्रकार के परिग्रह के त्यागी हैं तथा शुद्ध भावों से पाँच महाव्रतों को आदि लेकर अट्ठाईस मूलगुणों को पालने वाले हैं।

पाँच महाव्रत + पाँच समिति + पाँच इन्द्रिय दमन + छह आवश्यक कर्म + स्नान त्याग + दंतधावन त्याग + वस्त्र त्याग + भूमि शयन + खड़े भोजन + एक बार भोजन + केशलोंच – ये **अट्ठाईस मूलगुण हैं।**

दंसन दह विहि भेयं, न्यानं पंच भेय उवएसं।(३२)
तेरह विहस्य चरनं, न्यान सहावेन महावयं हुंति।।६८९।।

अन्वयार्थ – (दंसन दहविहि भेयं) सम्यग्दर्शन दश भेदरूप हैं तथा **(पंच भेयन्यानं उवएसं)** ज्ञान पाँच प्रकार हैं ऐसा उपदेश साधुजन देते हैं। **(तेरह विहस्य चरनं)** तेरह प्रकार चारित्र पालते हैं। **(न्यान सहावेन हुंति महावयं) आत्मज्ञान के स्वभाव में तिष्ठना यह जिनके शुद्ध महाव्रत हैं।**

भावार्थ – निर्ग्रंथ साधु स्वयं पाँच महाव्रत, पाँच समिति व तीन गुप्ति, ऐसे तेरह प्रकार चारित्र पालते हुए अपने उपदेश में बताते हैं कि सम्यग्दर्शन दस प्रकार का है। उनका स्वरूप पहले कह चुके हैं तथा यह भी बताते हैं कि ज्ञान के मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय तथा केवल – ऐसे पाँच भेद हैं।

वे साधु शुद्ध आत्मा के ध्यान में नित्य मगन रहते हैं, यही उनका निश्चय महान् व्रत है।

ध्यानं च धम्म सुक्कं, आरति रौद्रं न दिस्टि दिस्टंतो।(३३)
अप्पा परमप्पानं, न्यान सहावेन महावयं हुंति।।६९०।।

अन्वयार्थ – (ध्यानं च धम्म सुक्कं) जो धर्मध्यान तथा शुक्लध्यान को ही मोक्षमार्ग जानते हैं **(आरति रौद्रं दिस्टि न दिस्टंतो)** आर्तध्यान तथा रौद्रध्यान पर अपनी दृष्टि नहीं देते हैं। **(अप्पा परमप्पानं)** आत्मा को परमात्मारूप जानकर ध्याते हैं। **(न्यान सहावेन महावयं हुंति)** ज्ञान स्वभाव से उनके महाव्रत होता है।

भावार्थ – यह छठे प्रमत्त गुणस्थानवर्ती साधु अन्तरङ्ग से ज्ञानपूर्वक महाव्रतों को पालते हैं। धर्म-ध्यान का तो अभ्यास करते हैं; परन्तु शुक्लध्यान को पाने की भावना भाते हैं। **शुक्लध्यान आठवें गुणस्थान से प्रारंभ होता है।** आर्त व रौद्रध्यान से अपनी रक्षा करते हैं।

आत्मा को परमात्मा रूप जानकर निरन्तर आत्मा का ही अनुभव करते हैं। निर्ग्रंथ पद छठे गुणस्थान से प्रारम्भ है। **गोम्मटसार में कहा है –**

''सकल संयम को रोकने वाली प्रत्याख्यानावरण कषाय के उपशम से जिसके पूर्ण संयम है; परन्तु साथ में **चार संज्वलन कषाय तथा नौ**

नोकषाय के उदय से संयम में मल को उत्पन्न करने वाला प्रमाद भी है, इसलिए इस गुणस्थान को प्रमत्तविरत कहते हैं।

यह महाव्रती सम्पूर्ण मूलगुण और शील भाव से युक्त होते हुए भी प्रगट (अनुभवगोचर) व अप्रगट प्रमाद को रखने वाले हैं। इनका आचरण चित्रल होता है अर्थात् कभी तो यह ध्यानमग्न हो जाते हैं, कभी यह आहार-विहार करते हैं या धर्मोपदेश देते हैं।''

सातवें से लेकर सर्व गुणस्थान ध्यानमयी ही हैं।

इस छठे गुणस्थान में ही मुनि के प्रवृत्ति रूप चारित्र होता है। इस गुणस्थान का काल अंतर्मुहूर्त है, फिर सातवाँ हो जावे। सातवें से छठा हो जावे ऐसा बार-बार हो सकता है। पंचम गुणस्थान का काल अंतर्मुहूर्त भी है व जीवनपर्यन्त भी (रहता) है।

आगे के सर्व गुणस्थानों का काल अंतर्मुहूर्त है, मात्र तेरहवें का जीवनपर्यन्त है, उसमें चौदहवें गुणस्थान का काल रह जाता है। प्रमादों का विशेष स्वरूप गोम्मटसार से जानना चाहिए।

●●●

७

अप्रमत्तविरत गुणस्थान

अप्रमत्त अप्रमानं, धम्मं सुक्कं च झान निम्मलं सुधं।(३४)
अवहि रिधि संजुत्तो, षिउ उवसम भाव सुंसुधं।।६९१।।

अन्वयार्थ – (अप्रमत्त अप्रमानं) अप्रमत्त गुणस्थान प्रमाण नय आदि की कल्पना से रहित है **(धम्मं सुक्कं च झान निम्मलं सुधं)** वहाँ शुक्लध्यान की भावना सहित व शुक्लध्यान का कारण निर्दोष शुद्ध धर्मध्यान है **(अवहि रिधि संजुत्तो)** किसी को अवधिज्ञान प्राप्त होता है **(क्षिउ उवसम भाव सुंसुधं)** यहाँ शुद्ध क्षयोपशम भाव है।

भावार्थ – सातवाँ अप्रमत्त गुणस्थान उसे कहते हैं कि जहाँ अपने आत्मस्वरूप में किंचित् भी प्रमाद नहीं है। इसीलिए यहाँ पर साधु बिलकुल ध्यानमग्न रहते हैं – निर्विकल्प होकर आत्मा का ध्यान करते हैं। उसके मन में प्रमाण व नय का विचार नहीं आता है।

आगम द्वारा द्रव्यों का विचार व शास्त्रों का चिंतवन छठे प्रमत्तविरत गुणस्थान में है, सातवें में नहीं है।

यहाँ (सातवें गुणस्थान में) निर्मल धर्मध्यान है, जिससे शुक्लध्यान उत्पन्न हो सकता है। कोई-कोई मुनि अवधिज्ञान को धारने वाले होते हैं। यहाँ अभी चारित्र की अपेक्षा न उपशम भाव है न क्षायिक भाव है, किन्तु क्षायोपशमिक भाव है। बारह कषायों का उदयाभावरूप क्षय तथा उपशम है। शेष चार कषाय व नौ नोकषाय का अति मंद उदय है।

वित्त रुव सदिट्ठी, विगतं संसार सरनि भावं च।(३५)
सुधं परमानंदं, न्यान सहावेन सुध तवयरनं।।६९२।।

अन्वयार्थ – (वित्त रूव सदिट्ठी) अप्रमत्त गुणस्थानवर्ती साधु आत्मा के प्रगट रूप को भले प्रकार अनुभव करता है **(विगतं संसार सरनि भावं च)** वह संसार के मार्ग में ले जाने वाले भावों से रहित है **(सुधं परमानंदं)** शुद्ध परम आनन्द का स्वाद लेता है **(न्यान सहावेन सुध तवयरनं)** ज्ञान स्वभावी आत्मा में ठहरकर शुद्ध आत्म तपनरूप तपश्चरण करता है।

भावार्थ – सातवें गुणस्थान में मन, वचन, काय तीनों स्थिर रहते हैं। ध्यानमग्न साधु शुद्धोपयोग में ठहरकर अपने आत्मा को स्वसंवेदन ज्ञान के द्वारा जानकर उसी में तल्लीन होकर निश्चय तप का साधन करता है और कर्मों की निर्जरा करता है।

श्री गोम्मटसार में इसका स्वरूप यह है –

''सर्व प्रमादों से रहित – महाव्रत, मूलगुण व शील स्वभाव से मंडित ज्ञानी **जब तक उपशम या क्षपकश्रेणी न चढ़े, तब तक ध्यान में तल्लीन रहता है, यही अप्रमत्तविरत साधु है।**''

●●●

८

अपूर्वकरण गुणस्थान

अपूर्वकरण अपूर्वं, अवधिं संजुत्त निम्मलं सुधं।(३६)
न्यान सहावं नित्यं, अप्पा परमप्प भाव संजुत्तं।।६९३।।

अन्वयार्थ – (अपूर्वकरण) अपूर्वकरण गुणस्थानधारी साधु के **(अपूर्वं)** पहले कभी नहीं हुए ऐसे अपूर्व उज्ज्वल भाव होते हैं **(अवधिं संजुत्त निम्मलं सुधं)** कोई-कोई अवधिज्ञान सहित निर्दोष शुद्ध भाव के धारी होते हैं **(न्यान सहावं नित्यं)** वे सदा ज्ञान स्वभाव में मग्न रहते हैं **(अप्पा परमप्प भाव संजुत्तं)** आत्मा को परमात्मारूप अनुभव करते हैं।

भावार्थ – चारित्र मोहनीय की २१ प्रकृतियों का उपशम करने वाला साधु उपशम श्रेणी व क्षय करने वाला साधु क्षपक श्रेणी चढ़ता है।

- द्वितीयोपशम सम्यक्त्वी अनन्तानुबन्धी कषाय को उपशम या उनको अप्रत्याख्यानावरण आदि में विसंयोजन (पलटन) करके उपशम श्रेणी चढ़ता है।
- क्षायिक सम्यक्त्वी भी उपशम श्रेणी चढ़ सकता है।
- क्षपक श्रेणी पर तो क्षायिक सम्यग्दृष्टि ही चढ़ता है।
- श्रेणी का पहला गुणस्थान अपूर्वकरण है।
- यहाँ समय-समय अपूर्व अनन्तगुणी विशुद्धता बढ़ती जाती है। पृथक्त्ववितर्कविचार नाम का पहला शुक्लध्यान प्रारम्भ हो जाता है। **इस ध्यान में साधु एकाग्र रहता है; तथापि अबुद्धिपूर्वक योग, शब्द व पदार्थ का पलटन हो जाता है।**
- **यहाँ शुद्धोपयोग उन्नतिरूप है। आत्मानुभव की छटा भी अपूर्व है। श्री गोम्मटसार में कहा है –**
- ''इस गुणस्थान में भिन्न समयवर्ती जीवों के परिणाम अपूर्व होते हैं।

भिन्न समयवर्ती ध्यानियों के परिणाम कभी नहीं मिलते।

- एक ही समय में चढ़ने वाले जीवों के परिणाम सदृश व विसदृश दोनों प्रकार के होते हैं।
- इस गुणस्थान में चढ़ने वाला सातिशय अप्रमत्त गुणस्थान में अधःकरण लब्धि द्वारा परिणामों को समय-समय अनन्तगुणा उज्ज्वल करता है। ये परिणाम इस जाति के होते हैं कि भिन्न समयवर्ती जीवों के मिल भी जावें व न भी मिलें।
- दूसरी लब्धि शुरू करते ही **अपूर्वकरण गुणस्थान** होता है, तब भिन्न समयवर्ती के परिणाम कभी मिलते नहीं हैं।

●●●

९

अनिवृत्तिकरण गुणस्थान

अनिवरतं ससहावं, सुध सहावं च निम्मलं भावं।(३७)
क्षिउ उवसम सदर्थं, न्यान सहावेन अनिवर्तयं सुधं।।६९४।।

अन्वयार्थ – (अनिवरतं ससहावं) अनिवृत्तिकरण गुणस्थान में साधु आत्मस्वभाव में रहता है **(सुध सहावं च निम्मलं भावं)** शुद्ध स्वभाव में मग्न रहता है, निर्मल भावों का धारी होता है **(क्षिउ उवसम सदर्थं)** या तो क्षपक श्रेणी पर होता है या उपशम श्रेणी पर होता है, सत्य अस्तिरूप आत्म पदार्थ को **(न्यान सहावेन)** ज्ञान स्वभाव में ही तिष्ठकर ध्याता है **(सुधं अनिवर्तयं)** तब यह शुद्ध अनिवृत्तिकरण के परिणामों को पाता है।

भावार्थ – जहाँ शरीर, आयु इत्यादि में भेद होने पर भी एक समयवर्ती नाना जीवों के परिणामों में समान समय-समय विशुद्धता की उन्नति होती है – **एक समयवर्ती जीवों के परिणाम समान रहे, सो अनिवृत्तिकरण लब्धिधारी नौवाँ गुणस्थान है।**

यहाँ भी उपशम या क्षपक श्रेणी होती है।

प्रथम शुक्ल-ध्यान से यह साधु आत्मध्यान की ऐसी अग्नि जलाता है, जिससे सिवाय सूक्ष्मलोभ के सर्व मोहनीय कर्म का उपशम या क्षय कर डालता है। **श्री गोम्मटसार में कहा है –**

''जहाँ शरीर के आकार आदि के भेद होने पर भी एक समयवर्ती सर्व जीवों के विशुद्ध परिणामों में जहाँ कोई भेद न पाया जावे, वह **अनिवृत्तिकरण गुणस्थान** है।''

●●●

१०

सूक्ष्मसांपराय गुणस्थान

सूष्म भेय संजुत्तं, क्षिउ उवसम भाव संजदो सुधो।(३८)
निम्मल सुध सहावं, अप्पा परमप्प निम्मलं सुधं।।६९५।।

अन्वयार्थ – (सूष्म भेय संजुत्तं) सूक्ष्म लोभ भाव सहित साधु **(क्षिउ उवसम भाव – संजदो सुधो)** क्षपक श्रेणी पर या उपशम श्रेणी पर होने वाले भावों का धारी शुद्ध संयमी **(निम्मल सुध सहावं)** निर्दोष शुद्ध आत्मस्वभाव को ध्याता है **(अप्पा परमप्प निम्मलं सुधं)** आत्मा को परमात्मा रूप मल रहित व रागादि दोष रहित शुद्ध ध्याता है।

भावार्थ – जहाँ मात्र सूक्ष्म लोभ का उदय इतना अल्प हो कि ध्याता को ध्यान में न झलक सके ऐसे ध्यानमयी साधु को दसवाँ सूक्ष्म लोभ नाम का गुणस्थान होता है।

यह प्रथम शुक्लध्यान में मग्न होता हुआ शुद्धात्मा का ही अनुभव करता है, अंतर्मुहूर्त में ही लोभ का उपशम या क्षय कर डालता है।

घाय चवक्कय विरयं, नंत चतुस्टय भावना सुधं।(३९)
कम्ममल पयडि तित्तं, न्यान सहावेन सूक्षमं परमं।।६९६।।

अन्वयार्थ –यह साधु **(घाय चवक्क्य विरयं)** चार घातिया कर्मों से विरक्त है **(नंत चतुस्टय भावना सुधं)** अनन्त ज्ञानादि चतुष्टय की शुद्ध भावना में लीन है **(कम्ममल पयडि तित्तं)** सर्व कर्म प्रकृतियों के उदय से ममता रहित है **(न्यान सहावेन परमं सूष्म)** आत्मज्ञान के स्वभाव में ठहरकर परम सूक्ष्म आत्मा का अनुभव करता है।

भावार्थ – दसवें गुणस्थानवर्ती साधु के अन्तरंग में पूर्व अभ्यास से यह भावना वर्त रही है कि **किसी भी तरह घातिया कर्मों का नाश होकर आत्मा के स्वाभाविक अनन्त ज्ञानादि गुणों का विकास हो। वह सर्व कर्मों के उदय को नहीं चाहता है, केवल शुद्ध आत्मा का प्रेमी है।** वह निश्चय ध्यान में तिष्ठकर अतीन्द्रिय आत्मा का स्वाद लेता है।

श्री गोम्मटसार में कहा है –

''जैसे धुले हुए कौसुंभी वस्त्र के लालपना बहुत सूक्ष्म रह जाता है, वैसे जो साधु अत्यन्त सूक्ष्म राग सहित है; वह सूक्ष्मसांपराय गुणस्थान वाला जानने योग्य है। यह साधु वीतराग चारित्र के अनुभव में किंचित् ही कम है।''

●●●

(११)

उपशांतमोह गुणस्थान

उवसंतो य कषायं, दर्सन मोहंध उवसमं सुधं।(४०)
संसार सरनि तित्तं, उवसंतो पुनः सव्वहा सव्वे।।६९७।।

अन्वयार्थ – **(दर्सन मोहंध उवसमं सुधं)** जहाँ दर्शन मोहनीय कर्म का बिल्कुल उपशम या क्षय हो गया है **(उवसंतो य कषायं)** तथा चारित्र

मोहनीय कर्म, बिल्कुल उपशम हो गया है **(संसार सरनि तित्तं)** जो संसार के कारण भावों से रहित हो गए हैं **(सव्वहा सव्वे पुनः उवसंतो)** जहाँ सर्वथा सर्व शुभ भावों की भी शांति हो गई है, एक वीतराग यथाख्यात चारित्र है, वह उपशांत मोह नाम का ही ग्यारहवाँ गुणस्थान है।

भावार्थ – उपशम श्रेणी पर चढ़ने वाला साधु दसवें गुणस्थान से ग्यारहवें में आता है। **यह साधु या तो द्वितीयोपशम सम्यक्त्वी या क्षायिक सम्यक्त्वी होता है।**

इसलिए सम्यक्त्व घातक सातों प्रकृतियाँ उपशम हो रही हैं तथा चारित्र मोहनीय सम्बन्धी इक्कीस कषायों का यह शुक्लध्यान के बल से उपशम कर चुका है। सर्व प्रकार मोहनीय कर्म के उदय न रहने से यहाँ यथाख्यात चारित्र या नमूनेदार वीतरागता प्रगट है।

यहाँ न अशुभ भाव है न कोई शुभ भाव है मात्र शुद्धोपयोग है, शुक्ललेश्या है।

यहाँ सिवाय साता वेदनीय के और किसी कर्म का आस्रव नहीं होता है। यह भी ईर्यापथ आस्रव है। दूसरे ही समय में उसकी निर्जरा हो जाती है। कषायों के न होने से स्थिति व अनुभाग नहीं पड़ता है। यह दशा अन्तर्मुहूर्त से अधिक नहीं रहती है। **आत्मबल की कमी से फिर लोभ का उदय आ जाता है** और यहाँ से गिरकर दसवें में या धीरे–धीरे सातवें तक आ जाता है।

सातवें से फिर एक दफे उपशम श्रेणी चढ़ सकता है या तद्भव मोक्षगामी क्षपक श्रेणी चढ़ सकता है। यदि संसार अधिक हो तो और भी नीचे के गुणस्थानों में यहाँ तक कि मिथ्यात्व में भी जा सकता है।

सुधो सुधोदेसो, सुधो परमप्प लीन संजुत्तो।(४१)
क्षिउ उवसम संसुधो, न्यान सहावेन चरन्ति तवयरनं।।६९८।।

अन्वयार्थ – **(सुधो सुधोदेसो)** उपशांत कषाय गुणस्थानवर्ती साधु वीतराग हैं व शुद्ध शासन या श्रुतज्ञान के धारी हैं **(सुधो परमप्प लीन संजुत्तो)**

शुद्ध परमात्म स्वभाव में लीनता रूप शुक्लध्यान के धारी हैं **(क्षिउ उवसम संसुधो)** क्षायिक या द्वितीयोपशम सम्यक्त्व सहित है **(न्यान सहावेन तवयरनं चरन्ति)** ज्ञान स्वभाव में तिष्ठकर निश्चय तपश्चरण कर रहे हैं।

भावार्थ – उपशांत मोह भाव के धारी निर्ग्रंथ साधु निर्मल श्रुतज्ञान के धारी होकर अपने शुद्ध स्वभाव में लीन होते हुए शुक्लध्यान को ध्याते हैं। आत्मा के स्वभाव में वीतरागता सहित तपश्चरण या रमण कर रहे हैं। **श्री गोम्मटसार में कहा है –**

''निर्मली फल सहित जल की तरह या शरद ऋतु में सरोवर के पानी की तरह जहाँ सर्व मोह का उपशम हो गया है, ऐसे वीतराग परिणाम के धारी के उपशान्त कषाय गुणस्थान होता है। जैसे कतकफल से मिट्टी नीचे बैठ जाती है पानी ऊपर निर्मल है या शरद ऋतु में मिट्टी नीचे बैठ जाती है, ऊपर सरोवर का पानी निर्मल होता है। वैसे जहाँ मोह का उदय दबा हुआ है, ऊपर भाव मोह रहित है, सो उपशान्त मोह गुणस्थान है।''

●●●

(१२)

क्षीणमोह गुणस्थान

क्षीन कषायं उत्तं, क्षीनं घाय कम्म मल मुक्कं।(४१)
क्षीयंति क्षीन मोहो, न्यान सहावेन संजुत्त तवयरनं।।६९९।।

अन्वयार्थ – (क्षीन कषायं उत्तं) अब क्षीण कषाय के बारहवें गुणस्थान को कहते हैं जहाँ **(क्षीन मोहो क्षीयंति)** सूक्ष्म मोह भी नष्ट हो गया है **(न्यान सहावेन तवयरनं संजुत्त)** जो ज्ञान स्वभाव में तिष्ठकर शुद्ध आत्मतपनरूप तपश्चरण करते हैं **(क्षीनं घाय कम्म मल मुक्कं)** तथा जो

अनंत क्षीणता को प्राप्त घातिया कर्मों के मल को छुड़ा रहे हैं; वे क्षीणमोह गुणस्थानधारी हैं।

भावार्थ – क्षपक श्रेणी पर चढ़ने वाला साधु दसवें गुणस्थान के अन्त में सूक्ष्म लोभ का भी क्षय करके सर्व मोहनीय कर्म की वर्गणाओं से रहित होकर के इस गुणस्थान में आकर पूर्ण वीतराग हो जाता है और दूसरे शुक्लध्यान को ध्याता हुआ एकत्ववितर्क अविचार परिणति से ध्यानमग्न हो जाता है। इस शुक्लध्यान के अन्तर्मुहूर्त चलने से ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय इन तीन घातिया कर्मों का बल क्षीण होता चला जाता है।

जब तीन घातिकर्मों का बिल्कुल क्षय हो जाता है तब तेरहवाँ गुणस्थान प्रारंभ हो जाता है। क्षय करने की क्रिया इसी गुणस्थान में होती है।

मन पर्जय उववन्नं, धम्म सुक्कं च निम्मलं रूवं।(४२)
रूवातीत सहावं, न्यान सहावेन अप्प परमप्पं।।७००।।

अन्वयार्थ – (मन पर्जय उववन्नं) कोई-कोई साधु मनःपर्ययज्ञान के धारी होते हैं **(धम्म सुक्कं च निम्मलं रूवं)** वे पहले निर्मल आत्म स्वरूप धर्मध्यान को सातवें गुणस्थान तक फिर आठवें से शुक्लध्यान को ध्याते हुए इस गुणस्थान में आते हैं **(रूवातीत सहावं)** यहाँ अमूर्तिक आत्मा के स्वभाव में लीन हैं **(न्यान सहावेन अप्प परमप्पं)** ज्ञान स्वभाव में तिष्ठकर आत्मा को परमात्मरूप ध्याते हैं।

भावार्थ – किन्हीं साधुओं को मतिश्रुत दो ही ज्ञान होते हैं और बारहवें में चढ़ जाते हैं। कोई मतिश्रुतअवधि तीन ज्ञानधारी, कोई मनःपर्ययज्ञान सहित चार ज्ञानधारी होकर यहाँ आते हैं।

पहले निर्मल धर्मध्यान किया था उसी के बल से यहाँ निर्मल शुक्लध्यान को ध्या रहे हैं। दूसरा शुक्लध्यान अति निश्चल है, जिसके प्रताप से बिलकुल थिर आत्मा में लीन हैं। **श्री गोम्मटसार में कहा है –**

''सर्व मोह के क्षय हो जाने से जिस साधु के परिणाम स्फटिक के निर्मल बर्तन में रखे हुए जल की तरह अति निर्मल हैं, उसी निर्ग्रंथ साधु को **क्षीणकषाय,** वीतराग देवों ने कहा है।''

●●●

१३

सयोगकेवली गुणस्थान

संजोगे केवलिनो, आहार निहार विवज्जिओ सुधो।(४३)
केवल न्यान उवन्नो, अरहंतो केवली सुधो।।७०१।।

अन्वयार्थ – (संजोगे केवलिनो) सजोग केवली भगवान **(आहार निहार – विविज्जिओ सुधो)** आहार व निहार दोनों से रहित शुद्ध वीतराग होते हैं **(केवल न्यान उवन्नो)** जिनको केवलज्ञान उत्पन्न हो गया है **(अरहंतो केवल सुधो)** वे ही पूज्यनीय अरहंत परमात्मा केवली शुद्धोपयोगी सयोग केवलि जिन गुणधारी हैं।

भावार्थ – जब चारों घातिया कर्म का क्षय हो जाता है, तब निर्ग्रंथ साधु बारहवें से तेरहवें में आकर केवलज्ञानी अर्हंत परमात्मा सयोगी जिन कहलाते हैं। यहाँ अभी योगों का हलन–चलन है।

इस से उपदेश होता है व विहार होता है। आत्मा में अनन्तदर्शन, अनन्तज्ञान, अनन्तसुख, अनन्तवीर्य प्रकाशमान है। इसी से शरीर सहित सकल या जीवन्मुक्त परमात्मा कहलाते हैं।

केवली भगवान को क्षुधा की बाधा नहीं सताती है। न वे भिक्षा के लिए जाते हैं। न वे कवलाहार करते हैं। उनके मात्र शरीर को पोषण करने वाली नोकर्म वर्गणाओं का आहार स्वतः शरीर में उसी तरह हो जाता है, जैसे वृक्षों के लेपाहार होता है।

न उनके मलमूत्र का नीहार होता है। उनका शरीर शुद्ध कपूर की तरह धातु–उपधातु रहित होता है। वे स्फटिक रत्न की तरह तेजस्वी शरीरधारी होते हैं। वे शुद्धोपयोग में लीन हैं। परम वीतराग हैं। उनकी शांत मुद्रा का दर्शन करके देव, मानव, पशु सब तृप्त हो जाते हैं। उनको सर्व ही भव्य जीव भद्र परिणामी पूजते हैं व नमन करते हैं।

श्री गोम्मटसार में कहा है –

''जिनके केवलज्ञानरूपी सूर्य की किरणों के समूह से अज्ञान का सर्वथा नाश हो गया है, जिनके नव केवल लब्धियाँ प्राप्त हैं, उसी से उन्होंने परमात्मा नाम पाया है।

वे नवगुण हैं – क्षायिक सम्यक्त्व, क्षायिक चारित्र, अनन्त दर्शन, अनन्त ज्ञान, अनन्त दान, अनन्त लाभ, अनन्त भोग, अनन्त उपभोग, अनन्त वीर्य।

वे भगवान, अतीन्द्रिय–असहाय ज्ञान व दर्शन के धारी हैं। योगों से युक्त होने के कारण **सयोगी** हैं। घातिया कर्मों के जीतने से **जिन** हैं। ऐसा अनादिनिधन ऋषि प्रणीत आगम में कहा है।''

●●●

१४

अयोगकेवली गुणस्थान

अजोगे केवलिनो, परमप्पा निम्मलो सुध ससहावं।(४४)
आनन्दं परमानन्दं, नंत चतुस्टय मुक्ति संपत्तो।।७०२।।

अन्वयार्थ – (अजोगे केवलिनो) अयोगकेवलीजिन चौदहवें गुणस्थानधारी **(परमप्पा निम्मलो ससहावं सुध)** मल रहित शुद्ध परमात्मा है। योगों का हलन चलन भी नहीं है **(परमानन्दं आनन्दं)** स्वाभाविक

परमानन्द में मग्न हैं **(नंत चतुस्टय मुक्ति संपत्तो)** अनन्त चतुष्टय सहित मुक्ति को पहुँचने वाले हैं।

भावार्थ – जब आयु कर्म में इतना काल बाकी रह जाता है, जितना काल अ इ उ ऋ लृ इन पाँच लघु अक्षरों के उच्चारण में लगता है, तब अरहन्त परमात्मा का योग बिलकुल निश्चल हो जाता है, योग रहित होने से वे अयोगीजिन कहलाते हैं।

यहाँ चौथा शुक्लध्यान होता है। इसी से शेष अघातिया कर्मों का भी क्षय कर यह मुक्ति को प्राप्त कर लेते हैं। **श्री गोम्मटसार में कहा है –**

''जो १८००० शीलों के स्वामी हो गए हैं – जिनके पूर्ण सहकार से कर्मों का आस्रव नहीं है, जिनके कर्मरूपी रज निर्जरा को प्राप्त हो रहा है, जिससे वे शीघ्र मुक्त होंगे, ऐसे अयोग केवली होते हैं।''

●●●

गुणस्थानातीत सिद्ध भगवान

सिधं सिध सरूवं, सिधं सिधि सौष्य संपत्तं।(४५)
नंदो परमानंदो, सिधो सुधो मुनेअव्वा।।७०३।।

भावार्थ – (सिधं सिध सरूवं) सिद्ध भगवान अपने स्वरूप को सिद्ध कर चुके हैं **(सिधि सौष्य संपत्तं सिधं)** सिद्ध भगवान के होने वाले अनन्त सुख को प्राप्त होकर जो सिद्ध हुए हैं **(परमानंदो नंदो)** जो परमानंद में आनन्दित हैं। **(सुधो सिधो मुनेअव्वा)** वे ही शुद्ध निरंजन सिद्ध हैं, ऐसा जानना योग्य है।

भावार्थ – जब आठों कर्मों का क्षय हो जाता है तब कर्मजनित सर्व रचना भी दूर हो जाती है। इसलिए सिद्ध महाराज रागादि भावकर्म व शरीरादि नोकर्म से रहित हैं, सर्व बाधा से रहित हैं, स्वाभाविक परमानन्द

में नित्य मगन हैं, जो साध्य या उसको सिद्ध कर चुके हैं, इसी से सिद्ध कहलाते हैं। यही परमात्मा का वास्तविक स्वरूप है।

ए चौदस गुनठानं, रूवं भेयं च किंचि उवएसं।(४६)
न्यान सहावे निपुनो, कंमेनय विमल सिध नायव्वो।।७०४।।

अन्वयार्थ – (ए चौदस गुनठानं) ऊपर कहे प्रकार चौदह गुणस्थानों के **(रुवं भेयं च किंचि उवएसं)** स्वरूप का व भेद का कुछ उपदेश किया गया है **(न्यान सहावे निपुनो)** जो भव्य जीव अपने ज्ञान स्वभाव में लीन होने में प्रवीण हैं वे **(कंमेनय विमल सिध नायव्वो)** उसी को गुणस्थानों के क्रम से निर्मल सिद्धपना होता है, ऐसा जानना योग्य है।

भावार्थ – जो कोई भव्य जीव मोक्ष गए हैं व जाने वाले हैं व अब जा रहे हैं, उनके लिए मोक्षमार्ग पर चलने का एक ही मार्ग है।

जब तक इन गुणस्थानों को क्रम से पार करके शुद्ध भावों की उन्नति न की जाएगी तथा बाधक कर्मों का क्षय न किया जाएगा तब तक कोई भी शुद्ध सिद्ध परमात्मा नहीं हो सकता है। **श्री गोम्मटसार में कहा है –**

''जो ज्ञानावरणादि आठों कर्मों से रहित हैं, जो परमानन्द के अनुभव में लीन होकर परम शांत हैं, जो कर्मों के आस्रव के कारण भावों से रहित निरंजन हैं, जो अविनाशी हैं, कृतकृत्य हैं, सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र, वीर्य, सूक्ष्मत्व, अवगाहनत्व, अगुरुलघुत्व, अव्याबाधत्व; इन आठ गुणों के धारी हैं तथा लोक के अग्रभाग में सिद्धक्षेत्र में तिष्ठते हैं, वे ही सिद्ध हैं।''

●●●

ब्र. यशपालजी जैन का साहित्यिक कार्य

स्वतंत्र कृतियाँ

१. गुणस्थान विवेचन
२. जिनधर्म प्रवेशिका
३. मोक्षमार्ग की पूर्णता
४. जिनेन्द्र पूजेचे स्वरूप (मराठी)
५. जिनधर्म-विवेचन

अनुवाद एवं टीकाएँ

६. क्षत्रचूड़ामणि
७. योगसार प्राभृत

अनुवाद (मराठी)

८. योगसार
९. परमात्मप्रकाश

सम्पादित हिन्दी साहित्य

१०. सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका भाग-१
११. सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका भाग-३
१२. अध्यात्म बारहखड़ी
१३. पंचपरमेष्ठी
१४. योगसार प्राभृत-शतक
१५. तत्त्ववेत्ता : डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल
१६. चिन्तन की गहराईयाँ
१७. भावदीपिका
१८. बिखरे मोती
१९. दृष्टि का विषय
२०. णमोकार महामंत्र : एक अनुशीलन
२१. रीति-नीति
२२. मैं स्वयं भगवान हूँ
२३. जिनेन्द्र अष्टक
२४. गोली का जवाब गाली से भी नहीं
२५. बिन्दू में सिन्धु
२५. चौदह गुणस्थान

इसके अलावा ब्र. यशपालजी ने आचार्य कुन्दकुन्द विरचित पंचपरमागम एवं मोक्षमार्गप्रकाशक के कन्नड़ भाषा के अनुवाद में बहुमूल्य सहयोग दिया है।

कीमत कम करने वाले दातारों की सूची

१.	श्री जगनमलजी सेठी, जयपुर	१,१००.००
२.	श्रीमती मीना जैन, जयपुर	१,०००.००
३.	श्री महिला मण्डल टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर	१,०००.००
४.	श्री हीरालालजी सोगानी, साकरोंदा	१,०००.००
	कुल राशि	**४,१००.००**

दो शब्द

श्री जिन तारण-तरण स्वामी अध्यात्म जगत के महान तत्त्ववेत्ता, अध्यात्म रसिक, संगीतज्ञ महापुरुष ईसा की १५वीं शताब्दी में मध्य भारत में हुए हैं। उन्होंने उस समय की जनसामान्य की भाषा में १४ ग्रन्थों की रचना की है।

ज्ञानसमुच्चय सार सारमत का ग्रन्थ है। इन १४ ग्रन्थों में से ९ ग्रन्थों की हिन्दी में टीका जैन धर्मभूषण ब्र. शीतलप्रसादजी ने बहुत ही विद्वता से की है। सन् १९३२ तक जिन तारण तरण स्वामी की भाषा को तत्कालीन विद्वान समझने में असमर्थ थे - इस कारण ब्र. शीतलप्रसादजी ने तारण-तरण समाज का महान उपकार किया है।

प्रस्तुत संपादन में सारमत का ग्रन्थ ज्ञानसमुच्चयसार की गाथाओं पर विशेष अर्थ ब्र. यशपालजी ने लिखने का प्रयास किया है। जैनागम में गुणस्थानों का कथन मोक्षमार्गानुसार किया गया है। श्री जिन तारण तरण स्वामी का अध्ययन चारों अनुयोगों का था; किन्तु मुख्यता द्रव्यानुयोग की ही है।

ब्र. यशपालजी ने ब्र. शीतलप्रसादजी की टीका के आधार पर ही प्रस्तुत रचना की है, अपनी ओर से विषय को सरल बनाने हेतु सुंदर प्रयत्न किया है। उनका प्रिय विषय करणानुयोग है। गुणस्थान व्यवस्था समझने में इससे विशेष सहायता मिलेगी और पाठक सुगमता से इसे हृदयंगम कर सकेंगे।

इस संपादन कार्य को प्रकाशित करने का कार्य **पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट जयपुर** द्वारा किया गया है। यह उत्तम कार्य है।

आशा है पाठकगण इसका अध्ययन कर लाभ उठावेंगे - तारण-तरण समाज इस महती कार्य हेतु ब्र. यशपालजी का आभारी रहेगा।

पुनश्चः श्री जिन तारण-तरण स्वामी का जीवन चरित्र, सिद्धान्त शास्त्री पं. फूलचन्दजी द्वारा लिखित है, वह सही एवं प्रामाणिक है।

समैया सदन सागर — आभारी

दि. २-९-२०१२ — **भायजी कपूरचन्द समैया**

अध्यक्ष - तारण-तरण दि. जैन विद्वत्त परिषद्

कीमत कम करने वाले दातारों की सूची

६,००६/– श्री सेठ कैलाशचन्द सचिन कुमार समैया। ● श्री स्वाध्याय फंड तारण तरण दि. जैन चैत्यालय, सिलवानी।

३,०००/– श्री सेठ वीरेन्द्रकुमार, विष्णुकुमार समैया।

१,५००/– श्री तारण तरण दि. समाज की महिलाओं की ओर से ● श्री सेठ निहालचन्द, अरुणकुमार समैया।

१,०००/– श्री सेठ अजयकुमार, रोहितकुमार समैया ● श्री राकेशकुमार समैया अध्यापक, सिलवानी ● श्री कमलेशकुमार तारण तरण बस सर्विस ● श्री रतनचन्द, धर्मेन्द्रकुमार ● श्री जवाहर परिवार की बहुओं की ओर से ● श्री अंकुशकुमार, अमितकुमार समैया ● श्री राजीव कुमार, अंकित गारमेन्टस ● श्री सेठ प्रवीणकुमार, प्रशांतकुमार समैया ● श्रीमती चंदा बाई ध.प. स्व. पटेल बाबूलाल ● श्रीमती रागनी समैया ध.प. श्री रजनीश समैया।

६००/– श्री सेठ सुरेन्द्रकुमार, संजीवकुमार बनारसी ● श्री सेठ संजयकुमार, अनुजकुमार समैया।

५०१/– श्री संतोषकुमार, संगीतकुमार ● श्री पटेल विमलकुमार वैभवकुमार ● श्री सुभाषकुमार, सौरभ कुमार पत्रकार ● श्री सेठ अजितकुमार अंकितकुमार किराला ●श्रीमती प्रभा रानी सिलवानी ● श्रीमती विमला ध.प. स्व. श्री किशनजी शाहंगडा ● श्रीमती शांतिदेवी एवं श्री सेठ राजकुमार समैया ● श्री सेठ महेन्द्रकुमार कुलदीपकुमार, समैया ● श्रीमती कांति समैया, भंडारा ● श्री सुनीलकुमार रोहितकुमार बस सर्विस सिलवानी ● स्व. राजाराम विजयकुमार की स्मृति में दीपेश सारा ● सेठ नवीनकुमार उत्कर्ष कुमार समैया ● श्री राजकुमार पंकजकुमार ● श्री पटेल गौतमचन्द राहुलकुमार समैया।

३०१/– श्री राजेशकुमार खन्ना ● श्री पटेल सुभाषचन्द, उत्सवकुमार समैया, श्री प्रसन्नकुमार संयमकुमार ● श्रीमती शीला रानी ध.प. श्री सेठ नरेन्द्रकुमार समैया ● श्रीमती कृष्णा बहनजी, ● श्री लाला पवनकुमार, अनिमेषकुमार ● श्री सेठ आनन्दकुमार, अंशुकुमार ● श्रीमती चंदाबाई ध.प. स्व श्री राजेन्द्र पत्रकार ● श्रीमती स्नेहलता ध.प. श्री अशोककुमार ● श्री चन्द्रप्रकाश प्रणयकुमार ● श्री संजय समैया (मस्ताना)।

२५१/– श्री देश बंधूजी, सिद्धान्तकुमार।

२००/– श्रीमती अर्पणा ध.प. श्री आजाद समैया।

१५०/– श्री राजीव पुत्र स्व. श्री दीपचन्दजी सिलवानी

५१/– श्रीमती शकुन जीजी सिलवानी

सभी दातार सिलवानी (जिला–रायसेन मध्यप्रदेश) के हैं।

कीमत कम करने वाले दातारों की सूची

६,००६/– श्री सेठ कैलाशचन्द सचिन कुमार समैया। ● श्री स्वाध्याय फंड तारण तरण दि. जैन चैत्यालय, सिलवानी।

३,०००/– श्री सेठ वीरेन्द्रकुमार, विष्णुकुमार समैया।

१,५००/– श्री तारण तरण दि. समाज की महिलाओं की ओर से ● श्री सेठ निहालचन्द, अरुणकुमार समैया।

१,०००/– श्री सेठ अजयकुमार, रोहितकुमार समैया ● श्री राकेशकुमार समैया अध्यापक, सिलवानी ● श्री कमलेशकुमार तारण तरण बस सर्विस ● श्री रतनचन्द, धर्मेन्द्रकुमार ● श्री जवाहर परिवार की बहुओं की ओर से ● श्री अंकुशकुमार, अमितकुमार समैया ● श्री राजीव कुमार, अंकित गारमेन्टस ● श्री सेठ प्रवीणकुमार, प्रशांतकुमार समैया ● श्रीमती चंदा बाई ध.प. स्व. पटेल बाबूलाल ● श्रीमती रागनी समैया ध.प. श्री रजनीश समैया।

६००/– श्री सेठ सुरेन्द्रकुमार, संजीवकुमार बनारसी ● श्री सेठ संजयकुमार, अनुजकुमार समैया।

५०१/– श्री संतोषकुमार, संगीतकुमार ● श्री पटेल विमलकुमार वैभवकुमार ● श्री सुभाषकुमार, सौरभ कुमार पत्रकार ● श्री सेठ अजितकुमार अंकितकुमार किराला ●श्रीमती प्रभा रानी सिलवानी ● श्रीमती विमला ध.प. स्व. श्री किशनजी शाहंगडा ● श्रीमती शांतिदेवी एवं श्री सेठ राजकुमार समैया ● श्री सेठ महेन्द्रकुमार कुलदीपकुमार, समैया ● श्रीमती कांति समैया, भंडारा ● श्री सुनीलकुमार रोहितकुमार बस सर्विस सिलवानी ● स्व. राजाराम विजयकुमार की स्मृति में दीपेश सारा ● सेठ नवीनकुमार उत्कर्ष कुमार समैया ● श्री राजकुमार पंकजकुमार ● श्री पटेल गौतमचन्द राहुलकुमार समैया।

३०१/– श्री राजेशकुमार खन्ना ● श्री पटेल सुभाषचन्द, उत्सवकुमार समैया, श्री प्रसन्नकुमार संयमकुमार ● श्रीमती शीला रानी ध.प. श्री सेठ नरेन्द्रकुमार समैया ● श्रीमती कृष्णा बहनजी, ● श्री लाला पवनकुमार, अनिमेषकुमार ● श्री सेठ आनन्दकुमार, अंशुकुमार ● श्रीमती चंदाबाई ध.प. स्व श्री राजेन्द्र पत्रकार ● श्रीमती स्नेहलता ध.प. श्री अशोककुमार ● श्री चन्द्रप्रकाश प्रणयकुमार ● श्री संजय समैया (मस्ताना)।

२५१/– श्री देश बंधूजी, सिद्धान्तकुमार।

२००/– श्रीमती अर्पणा ध.प. श्री आजाद समैया।

१५०/– श्री राजीव पुत्र स्व. श्री दीपचन्दजी सिलवानी

५१/– श्रीमती शकुन जीजी सिलवानी

सभी दातार सिलवानी (जिला–रायसेन मध्यप्रदेश) के हैं।